विवेक

1990–1991

सम्पादक
शैल नाथ चतुर्वेदी
हरि नारायण लाल

वेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र
पडरौना—274304

विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र पडरौना द्वारा राष्ट्रीय एकता युवा नेतृत्व शिविर के आयोजन पर प्रकाशित स्मारिका

स्टार प्रिण्टर्स 287, दरियाबाद, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित

अनुक्रम

□ □

सम्पादकीय निवेदन

विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र, पडरौना की ओर से "विवेक" का नवीन अंक अपने पाठकों को समर्पित करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। केन्द्र एक स्वयंसेवी संस्था है जिसका कार्य विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए ऐसे व्यक्ति चला रहे हैं जिनमें समाज के उपेक्षित पीड़ित और निर्बल जन के प्रति कर्त्तव्य भाव है और जो नवयुवकों की महती रचनात्मक क्षमता में विश्वास रखते हुए उन्हें सामाजिक समस्याओं से जोड़ना चाहते हैं। ये व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से भले ही पुष्ट न हो, उनमे उत्साह और अपने कर्त्तव्य का बोध अवश्य है। इन शुभेच्छुओं के कारण ही "विवेक" का प्रकाशन नियमित हो पा रहा है और वर्ष 1990-91 का अंक आपके हाथ में है।

हमारे देश के लिए यह समय अत्यन्त संकट का है। कश्मीर, पंजाब और असम के अलगाववादी तत्व भारत को खण्ड-खण्ड करने के लिए उद्यत हैं। राजनीतिक दलों को सत्ता के अतिरिक्त और कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा है। इस प्रयोजन के लिए जातीय और साम्प्रदायिक घृणा को हवा देने मे उन्हें कोई संकोच नहीं है। यह सभी तत्व भारत की एकता, अखण्डता और उदात्त संस्कृतियों के लिए खतरा बन गये हैं। यह विडम्बना है कि इस समय देश की रक्षा बाहरी नही अपितु अपने ही लोगों से करने की स्थिति आ गयी है। इस संकट का प्रतिकार हो कैसे सकता है ?

इस संकट की घड़ी में हमारा ध्यान विवेकानन्द की ओर जाता है। उनके समय में भी देश बड़ी दुर्गति में था। किन्तु वे बड़े आशावादी थे। उन्हें युवाशक्ति पर बड़ा भरोसा था। वे विश्वास करते थे कि आस्थावान, संवेदनशील और कर्त्तव्योन्मुख नवयुवक भारत ही क्या सम्पूर्ण विश्व को बदल सकते हैं। आज एक शती बाद भी यह बात उतनी ही सत्य है। हम ऐसे अनेक नवयुवकों को जानते हैं जिनके हृदय में उत्साह का सागर हिलोरें ले रहा है, जो निःस्वार्थ भाव से दूसरों के लिए कष्ट उठाते हैं, जिन्हें परपीड़ा द्रवित करती है, जो सद्भाव से प्रेरित कुछ भी करने को तत्पर रहते हैं। नवयुवकों के यह गुण आज भी हमें आश्वस्त करते हैं—किसी दुखी का आर्त्तनाद व्यर्थ नही जायेगा, भारत अपनी उदात्त परम्परा नहीं छोड़ेगा और भारत का स्वरूप बिगड़ने नहीं पायेगा—उसकी एकता की रक्षा होगी।

उच्च विचारों से अनुप्राणित भारत की इस युवाशक्ति का हम अभिनन्दन करते हैं और आशा करते हैं कि युवकों के इस वर्ग में निरन्तर वृद्धि होती रहेगी। हमारा केन्द्र भी इस दिशा मे प्रयासरत है इस विश्वास के साथ कि नवयुवकों की जागृति से हम संकट की घड़ी अवश्य पार कर लेंगे।

'विवेक' के पूर्व अंकों के समान इस अंक में भी हमारा प्रयास है कि हमारे सुबुद्ध पाठकों को विशिष्ट और संग्रहणीय सामग्री उपलब्ध हो। भगवान बुद्ध पर स्वामी विवेकानन्द के विचार प्रकाशित कर हम तथागत के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करते हैं जिनकी निर्वाण-स्थली कुशीनगर में हमने राष्ट्रीय युवा योजना, जौरा के सहयोग से फरवरी 1991 में राष्ट्रीय एकता युवा नेतृत्व

शिविर का आयोजन किया। विवेकानन्द का दूसरा लेख भारत का उच्च जातियो के प्रति का प्रसंग सामयिक है। इस समय शुद्ध राजनीतिक लाभ के लिये समाज के विभिन्न वर्गों में द्वेष उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस सम्बन्ध में अधिकांश व्यक्ति भावुक होकर सरकारी नौकरी पाने के हानि-लाभ से अधिक कुछ भी विचार नहीं कर पाते। सामाजिक व्यवस्थाओं के विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध मे अनेक भ्रान्त धारणाओं ने हमें आक्रान्त कर रखा है जिनमें पानी देकर राज-नीतिक दल सिविलवार जैसी स्थिति लाने पर आमादा हैं। उदाहरण के लिए उच्च वर्ण वाले लोग सदा वर्ण-जाति व्यवस्था के समर्थक रहे हैं, इस व्यवस्था का विरोध दलितों ने ही किया, यह विरोध आधुनिक काल में ही किया गया, अस्पृश्यता उच्च वर्णों की देन है आदि। इन धारणाओ के सम्बन्ध मे अपने सुबुद्ध पाठकों को तथ्यों से परिचित कराने के लिये स्वामी जी के विचारो के अतिरिक्त हमने विश्वभारती के विख्यात मनीषी आचार्य क्षितिमोहन सेन के दो लेख भी सम्मिलित किये हैं।

1991 भारतरत्न डा० भीमराव अम्बेदकर का शताब्दी वर्ष है। हमारी दृष्टि में वे आधुनिक भारत के महापुरुषों में हैं। उन जैसा बहुपठित दूसरा व्यक्ति खोजना कठिन है। दुर्भाग्य-वश उनका उपयोग चुनाव चिन्ह की तरह किया जा रहा है। डा० अम्बेदकर को ठीक से समझने के लिए आधुनिक इतिहास, समाज-व्यवस्था, हिन्दू धर्म और मनोविज्ञान के ज्ञान के साथ गहरी समानुभूति भी अपेक्षित है। 'विवेक' के लघु कलेवर में उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है। हम लम्बी टिप्पणी के साथ उनके एक प्रसिद्ध भाषण का अंश प्रस्तुत कर सन्तोष कर रहे हैं।

गणेश शंकर विद्यार्थी की 1990 में जन्म शती मनायी गयी। उन्हें श्रद्धांजलि के रूप मे उनका एक वक्तव्य इस अंक में प्रकाशित किया जा रहा है। प्रसिद्ध समाजवादी नेता स्वर्गीय राम मनोहर लोहिया के व्यक्तित्व के एक अल्पज्ञात पक्ष को उजागर करने के लिये अपने पाठकों की सेवा में हम उनके दो लेख प्रस्तुत कर रहे हैं। सांस्कृतिक संकट की इस घड़ी में भारतीयता, धर्म और उसके मूल्य नयी दृष्टि की अपेक्षा रखते हैं। इस विषय पर सुप्रसिद्ध मनीषियो प्रोफेसर गोविन्द चन्द्र पाण्डे और और पद्मश्री डा० विद्यानिवास मिश्र के विचारोत्तेजक लेख प्रकाशित किये जा रहे है। विख्यात समाजसेवी बाबा आमटे का एक प्रेरक लेख भी इस अंक मे सम्मिलित है जो युवा वर्ग को नवीन दिशा-निर्देश करता है। भारतीय चिन्तन को विवेकानन्द के योगदान का आकलन करते हुए डा० शैलनाथ चतुर्वेदी और श्री एस० एन० सुब्बाराव के लेख भी आपको पढने को मिलेंगे।

अन्तिम पृष्ठों में विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र की गतिविधियों और कुशीनगर मे आयोजित अखिल भारतीय युवा शिविर का विवरण प्रस्तुत है।

हमें विश्वास है कि हमारे सुधी पाठकों को पूर्व अंकों के समान 'विवेक' का यह अंक भी रुचिकर लगेगा।

□ □

आभार-प्रदर्शन

'विवेक' का प्रकाशन हमारे हितैषियों के सहयोग से ही सम्भव हो पाता है। इस वर्ष अनेक सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं/संगठनों ने विज्ञापन देकर 'विवेक' को प्रस्तुत करने में हमारी सहायता की है। हम विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र की ओर से उन सबके प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

इस अंक की सामग्री विविध स्रोतों से संकलित की गई है जिसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं।

डॉ० चतुर्भुज सिंह
सचिव
विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र
पडरौना

भगवान बुद्ध

□

अमेरिका के डिट्रॉयट नगर में दिया गया विवेकानन्द जी का भाषण

[विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र तथा राष्ट्रीय युवा योजना, जौरा ने फरवरी 1991 में बुद्ध की निर्वाणस्थली कुशीनगर में राष्ट्रीय एकता युवा नेतृत्व शिविर का आयोजन किया। उनको नमन करते हुए प्रस्तुत है स्वामी जी के शब्दों में उनका आकलन।]

हर एक धर्म में हम किसी प्रकार की साधना को चरम सीमा पर पहुँची हुई पाते हैं। बौद्ध धर्म में निष्काम धर्म का भाव अत्यन्त विकसित है। तुम लोग बौद्ध धर्म तथा ब्राह्मण धर्म को समझने में भूल मत करो। बौद्ध धर्म हमारे सम्प्रदायों में से एक है। भारतीय वर्ण व्यवस्था, कठिन कर्मकाण्ड एवं दार्शनिक विवादों से ऊब कर गौतम नामक एक महापुरुष ने बौद्ध धर्म की स्थापना की। कुछ लोग कहते हैं कि हमारा एक विशेष कुल में जन्म हुआ है इसलिए हम उन लोगों से श्रेष्ठ हैं, जिनका जन्म ऐसे वंश में नहीं हुआ। भगवान बुद्ध का इस सिद्धान्त में कोई विश्वास न था—वे इस प्रकार के जाति-भेद के विरोधी थे। पुरोहित लोग धर्म के नाम पर जो कपटाचरण द्वारा स्वार्थ-सिद्धि करते थे, उसके भी वे घोर विरोधी थे। इसलिए उन्होंने एक ऐसे धर्म का प्रचार किया, जिसमें कामनाओं तथा वासनाओं के लिए स्थान न था। वे दर्शन तथा ईश्वर के सम्बन्ध में सम्पूर्ण अज्ञेयवादी थे।

उनसे कई बार ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे गये, पर उन्होंने सदैव यही उत्तर दिया, "मैं नहीं जानता।" उनसे पूछा गया कि मनुष्य का प्रकृत कर्तव्य क्या है ? उन्होंने कहा, "शुभ चरित्र बनो और शुभ कर्म करो।" एक बार पाँच ब्राह्मणों ने आकर उनसे विनती की, "भगवन्, हमारे वाद-विवाद का न्याय कीजिए।" उनमें से एक ने कहा, "भगवन्, हमारे शास्त्र में ईश्वर का यह स्वरूप बताया गया है और उसकी प्राप्ति के लिए यह मार्ग दर्शाया गया है।" दूसरे ब्राह्मण ने कहा, "नहीं, यह सब मिथ्या है, क्योंकि मेरे शास्त्र में इसके विपरीत लिखा है और ईश्वर प्राप्ति का अन्य मार्ग बतलाया गया है।" इस प्रकार दूसरों ने भी शास्त्रों की दुहाई दे कर ईश्वर के स्वरूप तथा उसकी प्राप्ति के सम्बन्ध मे अपने-अपने मत प्रकट किए। बुद्धदेव यह विवाद शान्ति पूर्वक सुन कर उनसे क्रमशः पूछने लगे, "क्या किसी के शास्त्र में यह भी कथन है कि ईश्वर कभी क्रोध करता है ? किसी की हानि करता है या अशुद्ध है ?" उन सबने कहा, "नहीं भगवन्, हमारे सभी शास्त्र यही कहते हैं कि ईश्वर शुद्ध, विकाररहित और कल्याणकर है।" तब भगवान बुद्ध बोले, "मित्रो, तुम सब पहले शुद्ध और सदाचारी बनने की चेष्टा क्यों नहीं करते, जिससे तुम्हें ईश्वर का ज्ञान हो सके।"

अवश्य ही मैं बुद्ध के समस्त दर्शन का अनुमोदन नहीं करता हूँ। मुझे अपने लिए यथेष्ट दार्शनिक विचार की आवश्यकता प्रतीत होती है। मैं पूर्णतया बौद्ध दर्शन से सहमत नहीं

हूँ, किन्तु यह मेरे उस महान आत्मा के चरित्र एवं भाव-सौन्दर्य के दर्शन में बाधक नहीं है। बुद्ध ही एक व्यक्ति थे, जो पूर्णतया तथा यथार्थ में निष्काम कहे जा सकते हैं। ऐसे अन्य कई महापुरुष थे, जो अपने को ईश्वर का अवतार कहते थे और विश्वास दिलाते थे कि जो उनमें श्रद्धा रखेंगे, वे स्वर्ग प्राप्त कर सकेंगे। पर बुद्ध के अधरों पर अन्तिम क्षण तक ये ही शब्द थे, 'अपनी उन्नति अपने ही प्रयत्न से होगी। अन्य कोई इसमें तुम्हारा सहायक नहीं हो सकता। स्वयं अपनी मुक्ति प्राप्त करो।' अपने सम्बन्ध में भगवान बुद्ध कहा करते थे, 'बुद्ध शब्द का अर्थ है— आकाश के समान अनन्त ज्ञान सम्पन्न; मुझ गौतम को यह अवस्था प्राप्त हो गई है। तुम भी यदि प्राणपण से प्रयत्न करो, तो उस स्थिति को प्राप्त हो सकते हो।' बुद्ध ने अपनी सब कामनाओं पर विजय पा ली थी। उन्हें स्वर्ग जाने की कोई लालसा न थी और न ऐश्वर्य की ही कोई कामना थी। अपने राज-पाट और सब प्रकार के सुखों को तिलांजलि दे इस राजकुमार ने अपना सिन्धु समान विशाल हृदय ले कर नर-नारी तथा जीव-जन्तुओं के कल्याण के हेतु आर्यावर्त की वीथी-वीथी में भ्रमण कर भिक्षावृत्ति से जीवन निर्वाह करते हुए अपने उपदेशों का प्रचार किया। जगत में वे ही एक मात्र ऐसे हैं जो यज्ञों में पशुबलि-निवारण के हेतु, किसी प्राणी के जीवन की रक्षा के लिए अपना जीवन भी निछावर करने को तत्पर रहते थे। एक बार उन्होंने एक राजा से कहा, "यदि किसी निरीह पशु के होम करने से तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है, तो मनुष्य के होम से और किसी उच्च फल की प्राप्ति होगी। राजन, उस पशु के पाश काट कर मेरी आहुति दे दो—शायद तुम्हारा अधिक कल्याण हो सके।" राजा स्तब्ध हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान पूर्ण रूप से निष्काम थे। वे कर्मयोग के ज्वलन्त आदर्श-स्वरूप थे और जिस उच्चावस्था पर वे पहुँच गये थे, उससे प्रतीत होता है कि कर्म-शक्ति द्वारा हम भी उच्चतम आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं।

ईश्वर में विश्वास रखने से अनेक व्यक्तियों का मार्ग सुगम हो जाता है। किन्तु बुद्ध का चरित्र बताता है कि एक ऐसा व्यक्ति भी, जो नास्तिक है, जिसका किसी दर्शन में विश्वास नहीं, जो न किसी सम्प्रदाय को मानता है न किसी मन्दिर-मस्जिद में ही जाता है, जो घोर जड़वादी है, परमोच्च अवस्था प्राप्त कर सकता है। बुद्ध के मतामत या कार्यकलापों का मूल्यांकन करने का हमें कोई अधिकार नहीं। उनके विशाल हृदय का सहस्रांश पाकर भी मैं स्वयं को धन्य मानता। बुद्ध की आस्तिकता या नास्तिकता से मुझे कोई मतलब नहीं। उन्हें भी वह पूर्णावस्था प्राप्त हो गई थी, जो अन्य जन भक्ति, ज्ञान या योग के मार्ग से प्राप्त करते हैं। केवल इसमें—उसमें विश्वास करने से ही पूर्णता प्राप्त नहीं होती, कल्पना से कोई अर्थसिद्धि नहीं होती। यह तो शुक-सारिका भी कर लेते हैं। केवल निष्काम धर्म ही मनुष्य को पूर्णत्व तक पहुँचा सकता है।

□ □

भारत की उच्च जाति के प्रति

□

विवेकानन्द

[सामाजिक परम्पराओं के प्रति स्वामी विवेकानन्द के विचार बड़े स्पष्ट थे। शास्त्रों में आदर भाव रखते हुए भी वे जड़ता के घोर विरोधी थे और सामाजिक दोषों पर तीखा प्रहार करने में उन्हें संकोच नही होता था। किन्तु वे यह भी समझते थे कि सहस्त्रों वर्ष से चली आ रही परम्पराएँ जादू की छड़ी से एक दिन में समाप्त नहीं हो सकतीं। तथापि उनका अति संवेदनशील मन कभी-कभी सामाजिक अन्याय देखकर उबल पड़ता था। उनका प्रस्तुत वक्तव्य वोट की राजनीति के लिये नहीं दिया गया था, इसके एक-एक शब्द में दलितों के प्रति उनके ममत्व और समकालीन उच्च जातियों के व्यवहार पर आक्रोश झलकता है।]

रक्त-मांसहीन कंकालकुल, तुम लोग क्यों नहीं जल्दी से जल्दी धूलि में परिणत हो वायु में मिल जाते ? तुम लोगों की अस्थिमय अँगुलियों में पूर्व पुरुषों की संचित कुछ अमूल्य रत्नांगुलीय हैं, तुम्हारे दुर्गन्धित शरीरों को भेंटती हुई पूर्व काल की बहुत सी रत्नपेटिकाएँ सुरक्षित हैं। इतने दिनों तक उन्हें दे देने की सुविधा नहीं मिली। अब अंग्रेजी राज्य में, अबाध विद्या-चर्चा के दिनों में, उन्हें उत्तराधिकारियों को दो, जितने शीघ्र दे सको, दे दो। तुम लोग शून्य में विलीन हो जाओ और फिर एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़ कर किसानों की कुटी भेदकर, जाली, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकानों से, भुजवा के भाड़ के पास से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों, जंगलों, पहाड़ों, पर्वतों से। इन लोगों ने सहस्त्र-सहस्त्र वर्षों तक नीरव अत्याचार सहन किया है—उससे पायी है अपूर्व सहिष्णुता। सनातन दुःख उठाया, जिससे पायी है अटल जीवनी-शक्ति, ये लोग मुट्ठी भर सत्तू खा कर दुनिया उलट दे सकेंगे। आधी रोटी मिली, तो तीनों लोक। आर्य बाबा का दम भरते हुए चाहे प्राचीन भारत का गौरव-गान दिन-रात करते रहो और कितना भी 'डमडम्' कह कर गाल बजाओ, तुम ऊँची जात वाले क्या जीवित हो ? तुम लोग हो दस हजार वर्ष पीछे के ममी! जिन्हें 'सचल श्मशान' कह कर तुम्हारे पूर्व-पुरुषों ने घृणा की है। भारत में जो कुछ वर्तमान जीवन है, वह उन्ही में है और 'सचल श्मशान' हो तुम लोग। तुम्हारे घर-द्वार म्यूजियम हैं, तुम्हारे आचार-व्यवहार चाल-चलन देखने से जान पड़ता है बड़ी दीदी के मुंह से कहानियाँ सुन रहा हूँ। तुम्हारे साथ प्रत्यक्ष वार्तालाप कर के भी घर लौटता हूँ, तो जान पड़ता है चित्रशाला में तस्वीरें देख आया। इस माया के संसार की असली प्रहेलिका, असली मरु-मरीचिका तुम लोग हो भारत के उच्च वर्ण वाले। तुम लोग हो भूतकाल, लङ्, लुङ्, लिट्, सब एक साथ। वर्तमान काल में तुम्हें देख रहा हूँ, इससे जो अनुभव हो रहा है, वह अजीर्णता-जनित दुःस्वप्न है। भविष्य में तुम लोग शून्य हो, इत्, लोप, लुप्। स्वप्न राज्य के आदमी हो तुम लोग, अब देर क्यों कर रहे हो ? भूत-भारत-शरीर में इतना तेज

न अटेगा। ये रक्तबीज के प्राणों से युक्त हैं। और पाया है सदाचार बल जो तीनों लोकों में नहीं है। इतनी शान्ति, इतनी प्रीति, इतना प्यार, बेजबान रह कर दिन-रात इतना खटना और काम के वक्त सिंह का विक्रय! अतीत के कंकाल-समूह! यही है तुम्हारे सामने तुम्हारा उत्तराधिकारी भावी भारत। वे तुम्हारी रत्नपेटिकाएँ, तुम्हारी मणि की अँगूठियाँ—फेंक दो इनके बीच; जितना शीघ्र फेंक सको, फेंक दो, और तुम हवा में विलीन हो जाओ, अदृश्य हो जाओ, सिर्फ कान खड़े रखो। तुम ज्यों ही विलीन होगे, उसी वक्त सुनोगे, कोटिजीमूतस्यन्दिनी, त्रैलोक्य-कंपनकारिणी भावी भारत की उद्बोधन ध्वनि 'वाह गुरू की फतह'!

□ □

स्पृश्यास्पृश्य विचार

□

आचार्य क्षिति मोहन सेन

(इतिहास विषय की प्रकृति ही ऐसी है कि उसके अन्तर्गत व्यक्तियों, घटनाओं, व्यवस्थाओं, परिस्थितियों आदि का अध्ययन उनके दीर्घकाल बाद किया जाता है, उस समय जब उनसे सम्बन्धित सन्दर्भ से कटे, टूटे बिखरे महज कुछ प्रमाण ही शेष रह जाते हैं। परिणामतः हम अपने वर्तमान मॉडल, मूल्य और संस्कारों के वशीभूत होकर उनकी व्याख्या करते हैं और इतिहास का ठाठ खड़ा कर लेते हैं। इतना ही नहीं, फैसले भी सुना देते हैं, उचित-अनुचित का निर्णय भी कर देते हैं।

सामाजिक इतिहास के क्षेत्र में इन फैसलों का दूरगामी परिणाम हो सकता है। कभी-कभी तो यह फैसले ऐसे घाव कर देते हैं जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी रिसते रहते हैं, दुखते रहते हैं। भारतीय समाज-व्यवस्था के कतिपय पक्ष राजनीतिक अस्त्र के रूप में प्रस्तुत किये जा रहे हैं और हम उनके शिकार बनते जा रहे है। उदाहरण के लिए सुनते-सुनने हम यह मान बैठे हैं कि अनेक दोष वैदिक परम्परा से सम्बद्ध हैं और उन्हें उन्नीसवीं-बीसवीं शती में पहली बार चुनौती दी गयी। चुनौती देने वाले लोग वे थे जो इन व्यवस्थाओं से पीड़ित थे। इस सम्बन्ध में कुछ न कह कर हम प्रसिद्ध मनीषी आचार्य क्षितिमोहन सेन के दो लेख प्रस्तुत कर रहे हैं जो आपको रोचक तो लगेंगे ही, प्रचलित धारणाओं का परिष्कार भी करेंगे।)

जाति और कुल की विशुद्धि-रक्षा के लिए अन्य के संस्पर्श से अपने को बचाना पड़ता है। पर ऐसा जान पड़ता है कि इस प्रकार का प्रयत्न आर्यों ने ही प्रवर्तित नहीं किया। द्रविड़ और द्रविड़-पूर्व जातियाँ भी अपनी-अपनी सांस्कृतिक विशेषतायें इन्हीं नियमों से सुरक्षित रख सकी थीं। आर्यों ने यह बात उन्हीं से सीखी होगी। आज भी स्पर्शास्पर्श का विचार प्राचीन आर्य भूमि की अपेक्षा आर्येतर प्रधान प्रदेशों की जातियों में ही अधिक तीव्र और कठोर है।

दक्षिण में नायर जाति से तियाँ जाति वाले बारह पग दूर रहने को बाध्य हैं। पुलयन जाति के लोग तो नजदीक भी नहीं आ सकते। शूद्र के घर की चौहद्दी में स्थित जलाशय में ब्राह्मण का स्नानादि नही चल सकता (Willson's Indian Castes, Vol, II P. 74)। इलावन या शानारगण 24 पग दूर रहने को मजबूर हैं। 'पुलयन के स्पर्श से ब्राह्मण को सचेल स्नान करना पड़ता है (वही)।' घुरेने अपने ग्रन्थ में इस विषय की अनेक बातें इकट्ठी की हैं (पृष्ठ 9—14)।

निम्नतर जातियों में यह भेद इतना उग्र है कि कह कर समझाया नही जा सकता। पुल यन जाति के किसी आदमी को यदि कोई पारिया छू दे, तो पुलयन पाँच बार स्नान करके और

उगली से रक्त निकाल देने के बाद जाकर शुद्ध होता है। कुरिच्चन जाति यदि किसी अन्य नीच जाति से छू जाय तो उसकी शुद्धि की व्यवस्था और भी भयंकर है। सर्वत्र यही देखा जाता है कि ऊँची जातियों की अपेक्षा नीची जातियों में इसकी तीव्रता कहीं अधिक कठोर है।

दक्षिण भारत मे उल्लादन जाति यदि 40 हाथ के भीतर आ जाय तो शूद्र भी दूषित हो जाता है, ब्राह्मणादि की तो बात ही क्या है (Thurston. VII P. 220)। नायादि जाति का आदमी दो सौ हाथ की दूरी पर आ जाय तो सभी अपवित्र हो जाते हैं (वही Vol, V, P 275)। उन्हें कुछ भिक्षा देनी हो तो दूर जमीन पर रख कर वहाँ से दाता हट जाता है। फिर डरते-डरते वे आकर भिक्षा उठा ले जाते हैं (वही पृ० 274)।

जिस प्रकार ब्राह्मणों के लिए पारिया अस्पृश्य हैं, ठीक उसी प्रकार पारिया के लिए ब्राह्मण भी अस्पृश्य हैं। पारिया या होलेया जाति के मुहल्ले से जाने वाले ब्राह्मण को मार खानी पडती है, पहले तो कभी-कभी प्राण भी देने पड़ते थे। इसके बाद ब्राह्मण के वहाँ से हट जाने पर ये (पारिया) लोग गोबर से अपने गाँव और मुहल्ले की शुद्धि किया करते हैं (Thurston. VI, p 88)

कभी-कभी आपस के इस द्वेष का हेतु बड़ा मजेदार होता है। मद्रास प्रान्त में कापू जाति की संख्या सबसे अधिक है। कहते हैं कि इनके पूर्व पुरुषों ने पांडवों की जार-कन्या से विवाह किया था। इनकी कोई शाखा नर्तकी की सन्तान है (Thurston II P. 245, P. 247) इनमें स्त्रियों की ही प्रधानता है और किसी-किसी शाखा में विधवा-विवाह भी चलता है। (वही)।

कापुओं की 'येर्लम' शाखा अत्यन्त ब्राह्मण-विद्वेषी है। कारण यह बताया जाता है कि कोई दरिद्र ब्राह्मण अपनी कन्या का विवाह यथासमय अर्थाभाव के कारण नहीं कर सका और कन्या को कुमारी ही छोड़ कर चल बसा। अन्य ब्राह्मणों ने उस असहाय कन्या को जातिच्युत किया। कन्या निश्चय ही निर्दोष थी और उसे दण्ड भी बिना दोष के ही दिया गया था। एक कापू ने विपद्ग्रस्त कन्या को अपने घर में स्थान दिया। उस से उत्पन्न सन्तान 'येर्लम' हैं। ये कहते हैं कि ब्राह्मणों के दिमाग तो होता है किन्तु हृदय नहीं होता, नही तो निर्दोष कन्या को जातिच्युत क्यो करते ? न तो ये ब्राह्मण का छुआ कोई अन्न ही ग्रहण करते हैं और न अपने किसी अनुष्ठान मे उन्हे बुलाते ही हैं। विवाह में हवन नहीं होता, क्योंकि ऐसा करने पर ब्राह्मणों को बुलाना आवश्यक हो जाता। वृद्धा पुरंध्रियाँ आचारादि करके विवाह करा देती हैं (Thurston III P 229)।

बङ्गाल के 'काले पहाड़' के ब्राह्मण-विद्वेष के मूल में भी कुछ ऐसे ही हेतु थे। पंजाब के 'काले मिहिर' की कहानी भी बहुत कुछ ऐसी ही है। ब्राह्मणों ने उसके प्रति अन्याय किया था, उसे वह मृत्यु तक भूल नही सका और बराबर बदला लेता रहा। इसका पुराना नाम जयमल था। उसकी कबर के पास ब्राह्मण नहीं जा सकते (Gloss. Punjab and N. W. P. Vol. III. P. 425)।

होलेय अत्यन्त नीच मानी जाने वाली जाति है। ब्राह्मण के स्पर्श से उनका गृह एकदम अपवित्र हो जाता है (Mysore. III. P, 344)। इनके गाँव में प्रवेश करने पर ये लोग ब्राह्मणों को कुछ दिन पहले तक मार डालते थे। उड़ीसा के कुम्भीपटीया जाति के आदमी सबका

छुआ खा सकते हैं किन्तु ब्राह्मण, राजा, नाई और धोबी उनके लिए अस्पृश्य हैं। और भी ऐसी अनेक नीच समझी जाने वाली जातियाँ हैं, जिनके लिए ब्राह्मण का स्पर्श किया हुआ अन्न अशुचि है।

अब विचार करके देखा जाय कि यह भेद-बुद्धि या वर्जन-शीलता क्या आर्यों ने इस देश मे परिचित कराया होगा ? अन्यान्य देशों में भी तो आर्यों की नाना शाखायें है; उनमें यह भेद-बुद्धि क्या वर्तमान है ? यदि है, तो उसकी उग्रता कहाँ तक है ? जिस प्रदेश में शुरू-शुरू में आर्य लोग आये उस पंजाब में यह भेद-बुद्धि अधिक तीव्र है या दूरतम-दक्षिणात्यादि प्रदेशों में। आर्य लोगों के प्रथम आगमन-युग अर्थात् ऋग्वेद काल में यह भेद-बुद्धि अधिक थी या क्रमशः बाद में बढ़ती गई है ?

असल मे आर्यों के इस देश में आने के समय उनमें जाति भेद या तो था ही नहीं या था भी तो बहुत मामूली रूप में। तीव्रता धीरे धीरे बढ़ी है। अथवा प्राचीन आर्य भूमि में यदि जातिभेद कम उग्र हो तो भी यह सन्देह हो सकता है कि यह प्रथा आर्यों की ले आई हुई नही है। इन्होने इसे यहाँ आकर स्वीकार किया है।

प्राचीन ग्रीस, रोम और जर्मनी के आर्यों में कौलीन्याभिमान तो था पर जाति भेद जैसी कोई चीज नहीं थी। ईरान के अग्नि-उपासको में भी ठीक इसी प्रकार का जाति भेद नहीं है; पार्सी लोग उसे नहीं मानते।

दक्षिण में नीच जाति यदि ब्राह्मण मुहल्ले में आ जाय या ब्राह्मण यदि नीच जाति के मुहल्ले में चला जाय, तो खून-खच्चर की नौबत आ जाती है। नायर स्त्रियों के साथ नम्बूद्री ब्राह्मणों का सम्बन्ध तो होता है, पर नायर के छूने से ब्राह्मण को अपवित्र होना पड़ता है ! काम्मा-लन (बढ़ई लुहार आदि) 16 हाथ, ताड़ी बनाने वाला 24 हाथ, पालय या चेरुमा कृषक 32 हाथ और पारिया 40 हाथ के भीतर आ जाय, तो ब्राह्मणादि ऊँची जाति के लोग अपवित्र होते हैं। ब्राह्मण वगैरः ऊँची जातियों के जलाशय के पास से भी यदि कोई नीच जाति चला जाय तो जलाशय व्यवहार के अयोग्य हो जाता है। रामानुजी वैष्णवो का अन्न और पाक क्रिया किसी के देखने से भी अशुद्ध हो जाती है।

पंजाब आदि आर्य-प्रधान प्रदेशों में ऐसी तीव्रता नहीं है। दक्षिणात्य में जहाँ अनार्य जातियों की ही प्रधानता है, यह भेद तीव्र है। आजकल आधुनिक शिक्षा और विचारगत उदारता के कारण उच्च जाति के अनेक युवक इस भेद-भाव को तोड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं, पर नीची समझी जाने वाली जातियाँ अपने भेद-भाव को शिथिल नहीं करना चाहतीं। कभी-कभी देखा गया है कि ऊँची जाति के लड़के जब उत्साह वश नीची जाति के आदमी के हाथ का भात ग्रहण कर लेते है, तो वह भात देने वाला ही उसके हाथ का छुआ अन्न-जल नहीं ग्रहण करता ! कहता है— 'तुमने जब हमारे हाथ का भात खाया है तो और नीच जातियों का भी जरूर खाया होगा। इस लिये तुम्हारे हाथ का अन्न हम कैसे ग्रहण कर सकते है' ! !

अस्पृश्यता निवारण का वर्तमान आन्दोलन शुरू होने के बहुत पहले से शान्ति निकेतन आश्रम में स्पर्शास्पर्श विचार नहीं माना जाता था। सन् 1908 में मैंने देखा कि नौकरों में से अधि-कांश हाड़ी डोम आदि श्रेणी के हैं। कुछ थोड़े से ही लोग उनसे छूत मानते थे। अधिकांश आश्रम-वासी उनके हाथ का अन्न-जल निःसंकोच ग्रहण करते थे और अब भी करते हैं। आठ दस वर्ष पहले की बात है। एक दिन एक क्रिया के उपलक्ष में मेरे घर कई ग़रीब मोचियों ने भात माँगा। उन

दिनों बड़ा अकाल पड़ा हुआ था। मैंने देखा कि यद्यपि हम लोगों ने उन मोचियों को खिलाने को आज्ञा दी थी तथापि मेरे ही हाड़ी डोम आदि नौकर उन्हें घर में घुसने देना नहीं चाहते थे। परन्तु हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब मेरे हाड़ी डोम जातीय भृत्यों ने यह कह कर कि रंधनशाला का सब अन्न अपवित्र हो गया है, उस दिन कुछ नहीं खाया !

इन सारी बातों पर विचार करने से जान पड़ता है कि यह प्रथा आर्यों की लाई हुई नही है। यहाँ आकर, उन्होंने अनार्यों के भीतर यह भयंकर भेद-विभेद प्रचलित देखा और उसके प्रभाव को वे भी अतिक्रम नहीं कर सके ? खूब संभव है बहुत दिनों तक उन्होंने इसे अस्वीकार करने की चेष्टा भी की थी, पर बाद में बहुसंख्यकों के सामने उन्हें हार माननी पड़ी थी। आज यह प्रथा उनके मन में इस प्रकार घर कर बैठी है कि इसे ही उन्होंने अपनी वर्ण-श्रेष्ठता का प्रधान लक्षण मान लिया है। वे यह बात भूल जाते हैं कि जिन महर्षियों के नाम पर उनकी कुल-मर्यादा और वश-प्रतिष्ठा अवलम्बित है वे स्वयं छुआछूत का ऐसा विचार नहीं करते थे।

इस देश में आर्यों के आने के बाद ज्यों-ज्यों समय बीतता गया है, जाति भेद त्यों-त्यो तीव्र होता गया है। आर्यों के मूल स्थान से जितनी ही दूर वे हटते गये है, यह भेदभाव भी उनके मन में उतना ही उग्र होता गया है।[1]

जाति भेद का सर्वप्रधान अवलम्बन स्मृति है। इनमें भी प्रधान स्थान मनुस्मृति का है। मनुस्मृतिकार वेद-काल के अनेक बाद प्रादुर्भूत हुए थे। आचार्य केलकर उन्हें मगधवासी समझते हैं (उनकी युक्तियो के लिये दे० History of Castes in India. P. 66)। इस स्मृतिकार का देश चाहे जहाँ कहीं भी रहा हो, काल निश्चय ही बहुत बाद का है क्योंकि उनके विधि-निषेध मे आर्यों की जो रीति-नीति दी हुई है, वह अनेक परवर्ती युग की हैं।

---

1. यह विचित्र बात है कि ऊँच-नीच के भेद मिटाने के प्रयत्न में तत्तद् प्रदेश के मुसलमानों की ओर से भी बहुत विरोध होता है। ऐसा प्रायः देखा गया है कि यदि नाई नमःशूद्र (बंगाल की एक अन्त्यज समझी जाने वाली वीर जाति) की हजामत बनाने गया है या मोची डोम आदि ने उसकी पालकी उठाई है, या नमःशूद्र जूता पहन कर रास्ते से निकला है, तो बंगाल के गाँव से मुसलमान लाठी लेकर उन पर टूट पड़े हैं ! राजा राममोहन राय के प्रायः समकालीन ब्राह्मण वंशीय महात्मा ढेढ़राज को झाझर के नवाब ने आठ वर्ष तक जेल में सिर्फ इस लिए सड़ाया था कि उन्होंने हिन्दुओं में से जाति भेद की प्रथा उठा देनी चाही थी। अंग्रेजो की जीत होने पर जब नवाब भाग खड़े हुए, तब जेल का फाटक उन्होंने खुलवा दिया और ढेढ़राज की मुक्ति हुई; पर यह कह कर धमका देने की बात वे (नवाब) उस समय भी नही भूल सके कि फिर ऐसा अनाचार मत करना ! आज से कुछ साल पहले मैं ढाका जिले के एक नमःशूद्र विद्यालय को देखने गया। वहाँ गाँव के एक बड़े बूढ़े मुसलमान सज्जन ने बड़ी सरलता के साथ कहा कि मैं नहीं समझता कि आप जैसे भले आदमी इन चाण्डालों को पढ़ाने की बात का कैसे समर्थन करते हैं। ये रहेंगे तो हर हालत में चाण्डाल ही न ? ऐसे सरल लोगों के सिवा एक तरह के आधुनिक शिक्षित मुसलमान भी किसी गूढ़ राजनीतिक उद्देश्य से इस आन्दोलन का विरोध करते हैं। उनकी धारणा है कि हिन्दुओं मे भेदभाव रहने से ही उनकी जाति का कल्याण है !

आरम्भ में छुआछूत और रोटी-बेटी का विचार आज जैसा कठोर नहीं था, यह बात प्राचीन शास्त्रों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाती है। ये विचार धीरे-धीरे शताब्दियों बाद तीव्र हुए हैं।

प्रण्डित प्रवर श्री अनन्त कृष्ण आयार महोदय ने अपने Mysore Tribes and Castes नामक ग्रंथ (Vol. I. P. 128-159) में दिखाया है कि किस प्रकार इस देश में जाति भेद की प्रथा आविर्भूत हुई और किस प्रकार धीरे-धीरे बद्धमूल हुई। उन्होंने वैदिक और बौद्ध युग की जाति भेद की अवस्था वर्णन करने के बाद में वैश्यों की सामाजिक दुर्गति पर विचार किया है। इसके बाद परवर्ती काल की आलोचना करके वे लिखते हैं—"वैदिक युग में जातिभेद भ्रूणावस्था में था। ब्राह्मण और पुराण युग में उसकी उत्पत्ति हुई। धीरे-धीरे इस जाति भेद का प्रसार और प्रभाव बढ़ता गया। चारों ओर की पारिपार्श्विक अवस्थाओं के योग से यह प्राकृतिक नियमानुसार सहज भाव से धीरे-धीरे बद्धमूल हुआ और आज भी यह धीरे-धीरे और भी दृढ़ भाव से स्थापित होता जा रहा है (वही पृ० 154-155)।

□ □

जाति व्यवस्था पर आक्रमण

☐

आचार्य क्षितिमोहन सेन

जब वर्णाश्रम धर्म प्रवर्तित हुआ तो उसके साथ एक बहुत ऊँचा आदर्श भी लोक नेताओ के सामने जरूर रहा होगा। यही कारण है कि उन्होंने ब्राह्मण का स्थान जितना ऊँचा रखा उतना ही उसकी जवाबदेही भी अपरिसीम रख दी। यदि सभी लोग ब्राह्मण को पूज्य मानें तो तपस्वी ब्राह्मण भी सरल अनाडम्बर जीवन के साथ गम्भीर ज्ञान उच्च आदर्श और कठोर तपस्या के समन्वय से समाज को थोड़े से ही व्यय से अग्रसर कर सकें। निश्चय ही यह बहुत बड़ा आदर्श है। यही कारण है कि उन दिनों आदर्श रक्षा का अर्थ ही होता था ब्राह्मण-रक्षा! यही कारण है कि उन दिनो समाज की स्थिति के लिये ब्राह्मण-रक्षा की इतनी व्याकुलता प्राचीन ग्रन्थों में दिख जाती है। किन्तु यदि आदर्श के साथ ब्राह्मण का नित्य योग न हो, तो ब्राह्मण-रक्षा का कोई अर्थ हो नही होता। फिर तो इतिहास के ही निकट प्रश्न करना पड़ेगा! दुर्भाग्यवश आदर्श के साथ योग बहुत दिनों तक टिका नहीं रह सका। जहाँ श्रद्धा और सम्मान सहज ही मिल जाता हो, और इसके लिये किसी कठोर तपस्या की आवश्यकता न समझी जाती हो, वहाँ आदर्श से भ्रष्ट होने में कितनी देर लगती है? ऐसी हालत में तपस्या और आदर्श धीरे-धीरे शक्तिहीन और निर्जीव हो जाते हैं। सात्विकता और राजसिकता के स्थान पर भी जड़ तामसिकता विराजमान होती है।

इसी प्रकार धीरे-धीरे तपोभूमि, तीर्थों और मठों से व्याप्त हो गई। आचार्य और तपस्वीगण महन्तों और पण्डो के रूप में प्रकट हुए! जिन लोगों के ऊपर समाज के नेतृत्व का भार था वे लोग सरल और अनाडम्बर जीवन छोड़ कर बड़ी-बड़ी नौकरियों और जघन्य व्यवसायो मे जा फँसे। पैसा ही उनका ध्येय हो उठा। ऐसी अवस्था में वे अगर पुराने सम्मान का लोभ न छ‌ोडे तो काम कैसे चलेगा? दोनों ओर की सुविधा क्या एक ही साथ भोगी जा सकती है। 'हंसब ठठाइ फुलाउब गालू' एक साथ कैसे होंगे? क्या ही अच्छा हो यदि वे लोग स्वेच्छा से कोई एक ही सुविधा चुन लें—पुराना सम्मान या नया आराम। दोनों का लोभ न करें तभी कल्याण है।

शास्त्र जोर देकर कहते हैं कि ब्राह्मण का आदर्श उच्च और महान होना चाहिये। उस आदर्श से भ्रष्ट होने पर जन्म से ब्राह्मण होने पर भी उसका ब्राह्मणत्व जाता रहता है। इसीलिये स्कन्द पुराण कहता है कि राजद्वार पर वेद बेचने वाला ब्राह्मण पतित है (प्रभास खण्ड, प्रभास क्षेत्र महात्म्य 207।22-27), सदाचारहीन, सूदखोर और दुर्विनीतिपरायण ब्राह्मण शूद्र हैं (वही 28-34)। सूदखोर तो अस्पृश्य होता है। आपत्ति काल में यदि कोई सूदखोरी से जीविका निर्वाह करे, तो स्नान करने से महज उस समय के लिये पवित्र हो सकता है। यहाँ तक कि क्रियाकर्मान्वित होकर भी यदि ब्राह्मण वेद विद्या हीन हो, तो वह शूद्र हो जाता है। (सौरपुराण 17।36-39)।

लेकिन केवल वेद पढ़ना ही ब्राह्मणत्व के आदर्श के लिये पर्याप्त नहीं है। वेद पढ़ कर भी विचारपूर्वक जो उसका तत्व न समझ सके वह ब्राह्मण शूद्र-कल्प अपात्र है (पद्मपुराण, स्वर्ग: 26/135)।

उस युग में जो लोग लोकमत की परिचालना करना चाहते थे, उनके अन्तर में जो महान आदर्श था, वह आदर्श समाज-व्यवस्था में अग्रसर हो सके, यही उनकी कामना थी। इसीलिए वर्णाश्रम व्यवस्था में मानव मात्र की सार्थकता और परम कल्याण ही उसका उद्देश्य था। जहाँ आदर्श और उद्देश्य रहते हैं, वहाँ मनुष्य की विचार-बुद्धि जाग्रत रहती है। जहाँ कोई भी आदर्श और लक्ष्य नहीं है, वहाँ विचार किस बात का होगा ? इसीलिए उन दिनों जब जाति-भेद की व्यवस्था से उनका महत्तम उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ, उस समय उन दिनों इस सम्बन्ध में तीव्र विचार जागृत हुए थे। आज उद्देश्य और आदर्श की कला भी नहीं है; इसीलिये विचार-वितर्क की झझट भी नही है ! प्राचीन काल की तुलना में आजकल हमारा चित्त तामसिकता से भर उठा है। फिर भी कभी-कभी हम लोगों के मन में भी विचार-बुद्धि जागृत हो जाया करती है।

केवल इसी युग में, विदेशियों के संसर्ग से ही हम लोगों ने इस भेद के विषय में नये सिरे से सोचना शुरू किया हो सो बात नहीं है। आउल-बाउल आदि साधक बहुत दिनों से इस विषय में सबको सचेतन कर रहे हैं। कबीर, रैदास, तुकाराम, नानक, दादू आदि मध्ययुगीन महापुरुषों ने बारम्बार इन विषयों में अपनी तीव्र वाणी व्यवहार की है। जाति-भेद जितना दक्षिणात्य मे कठोर है उतना और कहीं भी नहीं ! इसीलिये तामिल और तेलुगु कवियों की वाणी में भी इसके विरुद्ध तीव्र घोषणा है।

तामिल देश में अगस्त्य लिखित कहा जाने वाला प्रसिद्ध एक तामिल ग्रन्थ है—'जाति-भेद मनुष्य की रची हुई व्यवस्था है, उद्देश्य सहज ही अन्न जुटा लेना है। वेद ब्राह्मणों को पोसने के लिये ही रचित हैं !' तामिल कवि सुब्रह्मण्य कहते हैं—'जन्म और मृत्यु सब के समान भाव से ही आते है। इनमें कहीं भेद नहीं है।' सूक्ष्म वेदान्त ग्रन्थ में भी ऐसी ही बात कही गई है—जिस दिन से स्त्रियाँ शूद्र हुईं उस दिन से ब्राह्मण के वीर्य से शूद्र-क्षेत्र में उत्पन्न सभी ब्राह्मण 'पारशव' हुए, क्योंकि ब्राह्मण-कन्या होने से क्या हुई। हैं तो सभी स्त्रियाँ शूद्र ही न ? फिर पारशव के गर्भ से शूद्रा की जो सन्तान होगी उसकी जाति क्या है ? इन अनन्त पारशवो से उत्पन्न जो लोग अपने को ब्राह्मण कहते हैं उनका ब्राह्मणत्व कहाँ है ?

तेलुगु कवि वेमन कहते हैं —"जन्म के समय कहाँ थी गायत्री और कहाँ उपवीत ? सूत्र (जनेऊ) हीना माता तो शूद्रा है। उसका पुत्र ब्राह्मण कैसे होगा ? इसीलिये सभी समान हैं, सभी भाई हैं। सबका जन्म एक ही तरह से हुआ है, सबके रक्त और मांस एक ही हैं। फिर क्यों इतना भेद-विभेद चलाते हो। क्यों नहीं भाई-भाई मिल कर रहते ? (What the castes are, Wilson, Vol, II, P. 90)

वीरशैव सम्प्रदाय के प्रवर्तक बसव और रमय्य इन्होंने इस जाति-भेद के मूल में ही कुठाराघात किया है। जैनों ओर बौद्धों ने भी इस प्रथा पर प्रबल भाव से आक्रमण किया है।

महाभारत में भी कुछ इस ढंग की बात कही गई है। युधिष्ठिर ने कहा है कि शूद्र वंश मे होने से ही कोई शूद्र नहीं होता और न ब्राह्मण वंश में होने से कोई ब्राह्मण होता है। जिनमें सत्य, दान, क्षमा, आनृशंस्य, तप और दया होती है, वे ही ब्राह्मण हैं। जिनमें ये नहीं हैं वे ही शूद्र हैं (वनपर्व 108।21-26)। इस प्रसंग में भृगु और भारद्वाज के संवाद को याद किया जा सकता है।

आदिपर्व में जब भीष्म ने कर्ण के जन्म के सम्बन्ध में व्यंग्य किया था तो दुर्योधन ने कहा था

कि नदियों और शूरो के उत्पत्ति स्थल दुर्ज्ञेय होते हैं[1] । अग्नि की उत्पत्ति जल से हुई, अथच चराचर उससे व्याप्त है, दधीचि की हड्डियों से दानव-सूदन बज्र की उत्पत्ति हुई । अश्विनी, कृत्तिका, शूद्र और गंगा से कार्तिकेय की उत्पत्ति है (137।13) क्षत्रिय कुलोत्पन्न विश्वामित्रादि ने अव्यय ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था (137।14), कलश से उत्पन्न होकर भी द्रोणाचार्य शास्त्रधारियो मे श्रेष्ठ हुए हैं । गौतमवंशीय गौतम का जन्म शरस्तंब से हुआ था (15), हे पाण्डवों, तुम्हारी जन्मकथा भी तो हमें अज्ञात नहीं है (137-61) ।

दक्षिण देश में 'कपिलद्वीपम्' नामक एक 'जात-पांत तोड़क' ग्रन्थ है । तेलगु के शूद्र कवि वेमन ने तो इस व्यवस्था के प्रति प्रचण्ड आघात किया है ।

परन्तु बज्रसूची या बज्रसूचिकोपनिषद् में इन बातों पर प्रचण्डतम आघात किया गया है । इस ग्रन्थ के रचयिता का कुछ पता नही चलता । सन् 1829 में हडसन ने नेपाल में यह ग्रन्थ पाया था, वहाँ उन्होंने सुना था कि ग्रन्थ के रचयिता अश्वघोष है, जिनका समय विंटरनित्स के मत से सन् ईसवी की दूसरी शताब्दी है । सन् 1710 में लिखी हुई इस ग्रन्थ को एक प्रति नासिक मे प्राप्त हुई । स्थानीय पण्डितों ने बताया था कि इसके रचयिता शङ्कराचार्य है । सन् 973-981 ई० में चीन में इस ग्रन्थ का चीनी अनुवाद हुआ था । वहाँ यह ग्रन्थ धर्मकीर्ति का लिखा बताया जाता है । किन्तु इस देश में यह ग्रन्थ उपनिषद् नाम से मशहूर है और उपनिषद् का कोई कर्त्ता नही होता ! इस समय मेरे हाथ में जो कई प्रतियाँ इस ग्रंथ की हैं, उसमें से किसी से भी इसके रचयिता का पता नहीं चलता । बासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणसीकर रचित ग्रंथ में और खेमराज श्रीकृष्ण दास प्रकाशित ग्रन्थ में केवल मूल ही है । आड्यार के महादेव शास्त्री के संस्करण मे श्रीवासुदेव-शिष्य उपनिषद् ब्रह्मयोगी की एक व्याख्या भी है । श्री महेन्द्र तत्त्वनिधि विद्याविनोद के संस्करण में बंगला अनुवाद भी दिया हुआ है । इस ग्रन्थ की विचार्य वस्तु यह है कि ब्राह्मण कौन है ? जीव या देह या जाति या ज्ञान या कर्म या धर्म से ब्राह्मण नहीं होता । अद्वितीयात्मा का साक्षात्कार होने से ही ब्राह्मण होता है ।

यह ग्रन्थ अत्यन्त तीव्र भाषा में और साथ ही युक्तियुक्त भाव से लिखा गया है । राजा राममोहन राय इसकी विचार प्रणाली को देखकर विस्मित हुए थे । कुछ अंश उद्धृत करके दिखाये बिना समझना मुश्किल है कि इसका विचार पद्धति कैसी सहत, संयत और शक्तिशाली है । इसीलिये यहाँ इसके कुछ अंश उद्धृत किये जा रहे हैं—

"प्रश्न यह है कि ब्राह्मण कौन है ? जीव, देह, जाति, ज्ञान, कर्म या धर्मी ? इनमें ब्राह्मण कौन है[2] ?

"पहले विचार किया जाय कि क्या जीव ब्राह्मण है ? ऐसा नहीं हो सकता । क्योंकि अतीत और अनागत काल में ना ा जातीय देहों में जो जीव चल रहा है वह एकरूप है, एक ही जीव के कर्मवश अनेक देह पैदा होते हैं । इस प्रकार सर्व शरीर के जीव के एकरूपत्व की बात सोचने से जान पड़ता है कि जीव ब्राह्मण नहीं हो सकता[3] ।"

1—शूराणां च नदीनां च दुर्विदाः प्रभवाः किल । (137।11)

2—तत्रचोद्यमस्ति को वा ब्राह्मणो नाम, किं जीवः, किं देहः, किं जातिः, किं ज्ञानम् किं धार्मिक इति ।

8—तत्र प्रथमो जीवो ब्राह्मण इतिचेत्तन्न । अतीतानागतानेकदेहानां जीवस्यैकरूपत्वात् एकस्यापि कर्मवशादनेकदेहसंभवात् सर्वशरीराणां जीवस्यैकरूपत्वाच्च । तस्मान्न जीवो ब्राह्मण इति ।

"तो फिर क्या देह ब्राह्मण है ? नहीं। आचाण्डाल सभी मनुष्यों के शरीर पाँच भौतिक और एक ही तरह के हैं। सर्वत्र ही जरा-मरण धर्म की एकता दिखती है। ऐसा तो कोई नियम नही दिखाई देता कि ब्राह्मण श्वेत वर्ण का, क्षत्रिय रक्त वर्ण का, वैश्य पीत वर्ण का और शूद्र कृष्ण वर्ण का हो। देह अगर ब्राह्मण होता तो पिता के मृत देह को दाह करने पर पुत्र को ब्रह्म हत्या का पाप होता। पर ऐसा तो होता नहीं। इसलिये देह ब्राह्मण नहीं है[1]।"

"तो फिर क्या जाति ब्राह्मण है ? नहीं। ऐसा होता तो जात्यन्दर-विशिष्ट अनेक जन्तुओं में भी अनेक जातियाँ होतीं। मनुष्य जाति के सिवा भी अन्य जाति से बहुत से महर्षियों का जन्म हुआ है। मृगी से ऋष्यश्रृङ्ग, कुश से कौशिक, जम्बुक से जाम्बुक, बल्मीक से बाल्मीकि, कैवर्त-कन्या से व्यास, शशपृष्ठ से गौतम, उर्वशी से वशिष्ठ, कलश से अगस्त्य उत्पन्न हुए थे, ऐसी श्रुति है। जाति के बिना भी ज्ञान-सम्पन्न बहुत ऋषि हैं। इसलिए जाति ब्राह्मण नहीं है[2]।"

तो फिर क्या ज्ञान ब्राह्मण है ? नहीं। अभिज्ञ और परमार्थदर्शी क्षत्रिय भी तो अनेक हैं। इसलिये ज्ञान ब्राह्मण नहीं है[3]।

तो फिर क्या कर्म ब्राह्मण है ? नहीं। सभी प्राणियों के प्रारब्धसंचित और आगामी कर्मों की समता दिखती है। कर्म से अभिप्रेरित होकर ही सब लोग कर्म करते हैं। इसीलिये कर्म ब्राह्मण नही हो सकता[4]।

तो क्या धार्मिक ब्राह्मण है ? नहीं। हिरण्यदाता क्षत्रिय वैश्य और शूद्र भी तो अनेक है। इसीलिये धार्मिक ब्राह्मण नही है[5]।

तो फिर ब्राह्मण कौन है, वह जो अद्वितीय जाति-गुण-क्रियाहीन सत्य ज्ञानानन्तस्वरूप आत्मा का साक्षात्कार प्रत्यक्ष भाव से करता है। यही स्मृति-श्रुति-पुराण इतिहास का अभिप्राय है। अन्यथा और किसी प्रकार से ब्राह्मणत्व की सिद्धि नहीं हो सकती[6]।

1—तर्हिदेहो ब्राह्मण इतिचेत्तन्न। आचण्डालादिपर्यन्तानां मानुपाणां पांचभौतिकत्वेन देहस्यैकरूपत्वात् जरामरणधर्मादिसाम्यदर्शनात। ब्राह्मण:श्वेतवर्ण: क्षत्रियो रक्तवर्ण:, वैश्य: पीतवर्ण: शूद्र: कृष्णवर्ण: इति नियमाभावात्, पित्रादिशरीरदहने पुत्रादीनां ब्रह्महत्यादिदोषसंभवाच्च। तस्मान्न-देहो ब्राह्मण इति।

2—तर्हि जातिब्राह्मण इति चेत्तन्न। तत्र जात्यन्तरजन्तुपु अनेकजाति सम्भवा महर्षयो बहव: सन्ति। ऋष्यश्रृंग: मृग्या:, कौशिक:कुशात्, जम्बूको जम्बूकात्, बाल्मीको वल्मीकात्, व्यास: कैवर्त-कन्यायाम्, शशपृष्ठात् गौतम:, वशिष्ठ उर्वस्याम्, अगस्त्य: कलशे जात इति श्रुतत्वात्। एतेषां जात्या विनाऽपि अग्रे ज्ञानप्रतिपादिता ऋपयो बहव: सन्ति। तस्मान्नं जातिर्ब्राह्मण इति।

3—तर्हि ज्ञानं ब्राह्मण इति चेत्तन्न क्षत्रियादयोऽपि परमार्थदर्शिन: अभिज्ञा: बहव: सन्ति। तस्मान्न ज्ञानं ब्राह्मण इति।

4—तर्हि कर्म ब्राह्मण इति चेत्तन्न। सर्वेषां प्राणिनां प्रारब्ध संचितागामि कर्मसाधर्म्यदर्शनात्। कर्माभिप्रेरिता: सन्तो जना: क्रिया: कुर्वन्तीति। तस्मान्न कर्म ब्राह्मण इति।

5—तर्हि धार्मिको ब्राह्मण इति चेत्तन्न। क्षत्रियादयो हिरण्य दातारो बहव: सन्ति। तस्मान्न धार्मिको ब्राह्मण इति।

6—तर्हि को ब्राह्मणो नाम य: कश्चिदात्मानमद्वितीयं जातिगुणक्रियाहीन सत्यज्ञानानंदानन्तस्वरूपं.... साक्षादपरोक्षीकृत्य....वर्तते.... स एव ब्राह्मण इति श्रुति-स्मृति-पुराणेतिहासानामभिप्राय:। अन्यथाहि, ब्राह्मणत्वसिद्धिर्नास्त्येव।

यहीं भविष्यपुराण की भी बात याद की जा सकती है। इस पुराण में (ब्राह्मपर्व अध्याय 41, 42) वर्णाश्रम धर्म पर ठीक इसी प्रकार कठोर आक्रमण किया गया है—जिसलिये सम्मान्य शूद्र और सम्मान्य ब्राह्मण, ये दोनों सामग्री और अनुष्ठान में समान ही हैं, इसीलिये ब्राह्मण और शूद्र में बाह्य या आध्यात्मिक कोई भेद नही है[1]। इसके बाद तीन भाषा में पुराणकार ने दिखाया है कि जाति-जाति में और सम्प्रदाय-सम्प्रदाय में कोई भेद नहीं है। भेद न तो बाहर है न भीतर, न मुख में, न ऐश्वर्य में, न आज्ञा में, न भय में, न वीर्य में, न आकृति में, न ज्ञान-दृष्टि मे, न आयु में, न अंग की पुष्टि में, न दुर्बलता में, न स्थिरता में, न चंचलता मे, न बुद्धि में, न वैराग्य मे, न धर्म में, न पराक्रम में, न त्रिवर्ग में, न नैपुण्य में, न रूपादि में, न औषध में, न स्त्रीगर्भ मे, न गमन में, न देह के मल-मोचन में, न हड्डी के छेद में, न प्रेम में, न क़द में, और न लोम में[2]।

पुराणकार यही नहीं कहते। आगे बढ़ कर और कहते हैं कि अति यत्नपूर्वक सभी देवता मिलकर खोजें तो ब्राह्मण और शूद्र में कोई भेद नही पावेंगे[3]। और "ब्राह्मण लोग भी चाँद की किरण के समान शुक्ल वर्ण नहीं हैं क्षत्रिय लोग भी किशुक पुष्प से लाल नहीं हैं, वैश्य लोग भी हरताल के समान पीले नहीं हैं और शूद्र कोयले के समान काले नही हैं[4]।

चलना, फिरना, शरीर, वर्ण, केश, सुख, दुःख, रक्त, त्वक्, मांस, भेद, अस्थिरस—इनमे सभी तो समान है। फिर चार वर्गों का भेद कहाँ है? (42); वर्ण, प्रमाण, आकृति, गर्भ-वास, वाक्य, बुद्धि, कर्म, इन्द्रिय, प्राण, शक्ति, धर्म, अर्थ, काम, व्याधि औषधि—इनमें कहीं भी तो जाति-गत प्रभेद नहीं है (43), जिस प्रकार एक ही पिता के चार पुत्रों की जाति एक ही होती है, उसी

1—सामग्र्यानुष्ठानगुणैः समग्राः
शूद्रा यतः सन्ति समाद्विजानाम्।
तस्माद्विशेषो द्विजशूद्रणाम्नो—
नाध्यात्मिको बाह्यनिमित्तको वा (41।29)

2—तस्मान्नच विभेदोऽस्ति न वहिर्नान्तरात्मनि।
न सुखादौ न चाश्वैर्ये नाज्ञायां ना भयेष्वपि।
न वीर्ये नाकृतौ नाक्षे न व्यापारे न चायुषि।
नांगे पुष्टे न दौर्बल्ये न स्थैर्ये नापि चापले।
न प्रज्ञायां न वैराग्ये न धर्मे न पराक्रमे।
न त्रिवर्गे न नैपुण्ये न रूपादौ न भेषजे।
न स्त्रीगर्भे न गमने न देहमलसंप्लवे।
नास्थि रंध्रे न च प्रेम्णि न प्रमाणे नलोमसु॥
(41/35-38)

3—शूद्र ब्राह्मणयोर्भेदो मृग्यमाणोऽपि यत्नतः।
नेक्ष्यते सर्वधर्मेषु संहतैस्त्रिदशैरपि। (41, 39)

4—न ब्राह्मणाश्चन्द्रमरीचिशुक्ला
न क्षत्रियाः किशुकपुष्पवर्णाः।
न चेह वैश्या हरितालतुल्याः
शूद्रा न चांगारसमानवर्णाः। (41, 41)

प्रकार सभी प्रजाओं का वह (भगवान्) एकमात्र पिता है। इसीलिये जातिभेद नहीं है[1]। इसके बाद वज्रसूची उपनिषद् के समान ब्राह्मण की उत्पत्ति में देहादि अवयव में कही भी भेद नहीं, यह दिखाया गया है (41/47-57)।

42वें अध्याय में और भी दिल खोल कर जातिभेद पर आक्रमण किया गया है। पुराणकार कहते हैं कि कैवर्ती के गर्भ से व्यास, चाण्डाल कन्या के गर्भ से पराशर, शुकी के गर्भ से शुकदेव, उलूकी के गर्भ से कणाद, मृगी के गर्भ से ऋष्यश्रृङ्ग, गणिका-गर्भ से वशिष्ठ, नाविका से मुनिश्रेष्ठ मंदपाल, मण्डूकी के गर्भ से मुनिराज माण्डव्य का जन्म है। और भी बहुत से लोग विप्रत्व प्राप्त कर चुके हैं (42/22-24)।

ये लोग जाति से नहीं बल्कि तपस्या से सिद्धि प्राप्त कर सके हैं। (42/26-30)। आगे चल कर 43वें और 44वें अध्याय में यही विचार चलता है और वहाँ यह बताया गया है कि जन्म से नहीं बल्कि चरित्र और तप से उच्चता आती है। बाह्य विधि के ऊपर प्रतिष्ठित वर्णभेद, नितान्त भौतिक और मिथ्या है। अनुसंधित्सु पाठक वहीं देख सकते हैं।

इस प्रकार की बातें और भी नाना पुराणों में और ग्रन्थों में पाई जाती हैं। यहाँ नमूने के तौर पर कुछ संग्रह किये गये हैं। इससे मालूम होता है कि उन दिनो इन सब विषयों में लोगों का चित्त सचेत था। प्रायः ब्राह्मणों को जातिभेद के लिये दोष दिया जाता है पर यह याद रखना चाहिये कि जातिभेद के विरुद्ध सबसे अधिक तीव्र आक्रमण जिन प्राचीन ग्रन्थों में किया गया है, वे अधिकांश ब्राह्मणों के ही लिखे हुये हैं।

प्राचीन काल में वीर शैव मत के स्थापयिता आचार्य वसव ने जो स्वयं ब्राह्मण थे, जातिभेद के विरुद्ध युद्ध घोषणा की थी। इस युग में ब्राह्मण समाज के प्रवर्तक राममोहन राय भी ब्राह्मण ही थे। उन्होंने यद्यपि प्रत्यक्ष भाव से जातिभेद के विरुद्ध कुछ नहीं कहा पर कार्यतः उनकी साधना जातिभेद के विरुद्ध गई। आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द भी ब्राह्मण ही थे। इन्होंने गुणकर्म के अनुसार वर्ण माना है। मध्य युग के रामानन्द ब्राह्मण ही थे। भक्त साधक ढेढराज भी ब्राह्मण थे। इन दोनों ने जातिभेद पर कठोर आघात किया है।

खूब सम्भव है कि वज्रसूची के रचयिता भी कोई ब्राह्मण आचार्य ही होंगे। तुलसी साहब हाथरसी प्रभृति ब्राह्मण वंशोत्पन्न ऐसे बहुत से धर्मगुरू हैं, जिन्होंने जातिभेद पर तीखा आक्रमण किया है। आज भी जो लोग समाज-संस्कार के व्रत में व्रती हैं वे ब्राह्मणादि उच्च वर्ण के ही लोग हैं। आश्चर्य की बात है कि इन्हें सबसे अधिक विरोध तथाकथित निम्नतर वर्णो की ओर से ही सहन करना पड़ता है।

समाज संस्कार के समस्त क्षेत्रों में ब्राह्मणों को ही आगे आते देखा जाता है। विधवा विवाह के प्रवर्तक स्व० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ब्राह्मण थे। जिन्होंने पहले पहल विधवा कन्याओं का व्याह कराया था, वे सभी ब्राह्मण ही थे। बेथुन कालेज नामक बंगाल के प्रसिद्ध बालिका विद्यालय के आदि प्रवर्तक ब्राह्मण ही थे। जब कि सब जगह से स्त्री-शिक्षा का विरोध हो रहा था; उस समय पहले पहल ब्राह्मणों ने ही अपनी कन्याओं को वहाँ पढ़ने के लिये भेजा था। □ □

1—पादप्रचारैस्तनुवर्ण, केशः सुखेन दुःखेन च शोणितेन ।
त्वङ्मांसमेदोऽस्थिरसैः समानाश्चतुः प्रभेदा हि कथं भवन्ति । 42
वर्णप्रमाणाकृतिगर्भवासवाग्बुद्धिकर्मेन्द्रियजीवितेषु ।
बलत्रिवर्गामयभेषजेषु न विद्यते जातिकृतो विशेषः । 43
चत्वार एकस्य पितुः सुताश्च तेषां सुतानां खलु जातिरेका ।
एवं प्रजानां हि पितैक एव पित्रैकभावान्न च जातिभेदः ।। 45 (भविष्यपुराण 41 अध्याय)

हम बौद्ध क्यों बने

☐

भारत रत्न डा० भीमराव अम्बेदकर

(इस वर्ष 14 अप्रैल को डा० अम्बेदकर की जन्मशती है। बीसवीं शताब्दी के भारतीय नेताओं में उनका विशिष्ट स्थान है। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे किन्तु सामाजिक क्षेत्र में उनका विशेष महत्व है। यहाँ उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की चर्चा करना सम्भव नहीं है, अतः हम उनके एक पक्ष की ही चर्चा करेंगे। इसे समझने के लिए लम्बी टिप्पणी आवश्यक है।)

बीसवीं शताब्दी में हिन्दू समाज को झकझोरने वाले तीन प्रमुख व्यक्ति हुए—महात्मा गान्धी, डा० हेडगेवार और डा० अम्बेदकर। गान्धी जी ने सामाजिक सुधार के लिये समझाने-बुझाने और आन्दोलन का मार्ग अपनाया तो डा० हेडगेवार ने इस विषय की चर्चा न करते हुए 'हिन्दू' शब्द का अत्यन्त व्यापक अर्थ स्वीकार किया और उनकी जातीय अस्मिता सुरक्षित रखने तथा उनकी एकता का प्रयत्न किया—वर्ण-जाति भेद का तिरस्कार इसमें निहित था। किन्तु डा० अम्बेदकर इन दोनों से भिन्न थे। प्रखर बुद्धि सम्पन्न और आत्मसम्मानी डा० अम्बेदकर ने सामाजिक भेद-भाव की क्रूरता स्वयं झेली थी, अतः उनकी प्रतिक्रिया अत्यन्त तीखी हुई। उनके व्यक्तिगत अनुभव के सन्दर्भ में हिन्दू समाज के प्रति उनकी उग्रता स्वाभाविक ही समझनी चाहिए। उन्हें अस्पृश्यता का समाधान केवल दलितों के अलगाव में ही दिखायी दे रहा था। लन्दन मे आयोजित गोलमेज सम्मेलन में उन्होंने दलितों के लिये अलग निर्वाचन तथा अन्य माँगों का उल्लेख करते हुए कहा—

"मैं जिन अछूतों के प्रतिनिधि के रूप में यहाँ खड़ा हूँ उनकी संख्या हिन्दुओं की कुल जनसंख्या का पाँचवाँ भाग है। अर्थात् अछूतों की संख्या ब्रिटेन या फ्रांस की जनसंख्या के बराबर है। परन्तु मेरे इन अछूत भाइयों की हालत गुलामों से भी बुरी है। गुलामों के मालिक उन्हें छू तो लेते थे परन्तु हमें छूना भी पाप समझा जाता है। ब्रिटिश सरकार की स्थापना से पहले छुआ-छूत के कारण हमारी दशा बहुत बुरी थी। क्या ब्रिटिश सरकार ने अपने सैकड़ों वर्षों के शासन के मध्य हमारी दशा सुधारने के लिए कुछ किया? पहले हम गाँव के कुएँ से पानी नहीं भर सकते थे। क्या अंग्रेज सरकार ने हमें यह अधिकार दिला दिया? पहले हम मन्दिर में दाखिल नहीं हो सकते थे, क्या अब हम दाखिल हो सकते हैं? पहले हमें पुलिस में भर्ती नहीं किया जाता था, क्या ब्रिटिश सरकार हमें पुलिस में भर्ती करती है? पहले सेना में भरती नहीं हो सकते थे, क्या अब हमारे लिए सेना में भरती होने के द्वार खुले हैं?

इन प्रश्नों में से किसी का उत्तर भी हाँ में नहीं दिया जा सकता। डेढ़ सौ वर्ष ब्रिटिश शासन के बाद भी हमारी दशा जैसी थी वैसी की वैसी है। ऐसी सरकार से हमारा क्या भला होगा? आज अछूत भी वर्तमान सरकार की जगह जनता की भलाई के लिए जनता द्वारा चलाया जाने वाला जनता का राज चाहते हैं मजदूरों और किसानों का खून चूसने वाले अमीरों

और जमीन्दारों की रक्षक सरकार हम नहीं चाहते । अपने दुःख हम स्वयं दूर करेंगे । इसलिए सरकार की बागडोर हमारे हाथों में होनी चाहिए ।

वर्तमान परिस्थितियों में कोई भी ऐसा संविधान लागू नहीं हो सकता जो देश की बहु-संख्या को स्वीकार न हो। वह युग बीत गया जब आप फैसला करते थे और हिन्दुस्तान मानता था । वह युग अब कभी नहीं लौटेगा ।"

इसका उत्तर देते हुए गान्धी जी ने कहा—

"अन्य अल्प-संख्यक जातियों के दावे को तो मैं समझ सकता हूँ, किन्तु अछूतों की ओर से पेश किया गया दावा तो मेरे लिए सबसे अधिक निर्दय घाव है। इसका अर्थ यह हुआ कि अस्पृश्यता का कलंक सदैव के लिए कायम रहे ।

भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए मैं अछूतों के वास्तविक हित को न बेचूंगा । मैं स्वयं अछूतों के विशाल समुदाय का प्रतिनिधि होने का दावा करता हूँ । यहाँ मैं केवल कांग्रेस की ओर से ही नहीं बोलता, प्रत्युत स्वयं अपनी ओर से भी बोलता हूँ और दावे के साथ कहता हूँ, कि यदि सब अछूतों का मत लिया जाय तो मुझे उनके मत मिलेंगे और मेरा नम्बर सबसे ऊपर होगा । और मैं भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक दौरा करके अछूतों से कहूँगा कि अस्पृश्यता दूर करने का उपाय पृथक् निर्वाचक-मण्डल अथवा कौंसिलों में विशेष रक्षित स्थान नहीं है ।

इस समिति को और समस्त संसार को यह जान लेना चाहिए कि आज हिन्दू-समाज मे सुधारकों का ऐसा समूह मौजूद है जो अस्पृश्यता के इस कलंक को जो उनका नहीं प्रत्युत् कट्टर एव रूढ़िवादी हिन्दुओं का कलंक है, धोने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है । हम नहीं चाहते कि हमारे रजिस्टरों में और हमारी मर्दुमशुमारी में अछूत नाम की जुदा जाति लिखी जाय । सिक्ख सदैव के लिए सिक्ख, मुसलमान हमेशा के लिए मुसलमान और अंग्रेज सदा के लिए अंग्रेज रह सकते हैं; किन्तु क्या अछूत भी, सदैव के लिए अछूत रहेंगे ? अस्पृश्यता जीवित रहे, इसकी अपेक्षा मैं यह अधिक अच्छा समझूंगा कि हिन्दू-धर्म डूब जाय ।

इसलिए डॉ० अम्बेडकर के अछूतों को ऊँचा उठा देखने की उनकी इच्छा तथा उनकी योग्यता के प्रति अपना पूरा सम्मान प्रकट करते हुए भी मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहूँगा, कि उन्होंने जो कुछ किया है वह अत्यन्त भूल अथवा भ्रम के वश में होकर किया है, और कदाचित् उन्हें जो कटु अनुभव हुए होंगे उनके कारण उनकी विवेक-शक्ति पर परदा पड़ गया है । मुझे यह कहना पड़ता है, इसका मुझे दुःख है; किन्तु यदि मैं यह न कहूँ तो अछूतों के हित के प्रति, जो मेरे लिये प्राणों के समान है, मैं सच्चा न होऊँगा । सारे संसार के राज्य के बदले भी मैं उनके अधिकारों को न छोड़ूंगा । मैं अपने उत्तरदायित्व का पूरा ध्यान रखता हूँ, जब मैं चाहता हूँ कि डॉ० अम्बेडकर जब सारे भारत के अछूतों के नाम पर बोलना चाहते हैं, तब उनका यह दावा उचित नहीं है; इससे हिन्दू-धर्म में जो विभाग हो जायँगे वह मैं जरा भी सन्तोष के साथ देख नहीं सकता ।

अछूत यदि मुसलमान अथवा ईसाई हो जायें तो मुझे उसकी कुछ परवा नहीं; मैं वह सह लूंगा; किन्तु प्रत्येक गाँव में यदि हिन्दुओं के दो भाग हो जायँ, तो हिन्दू-समाज की जो दशा होगी, वह मुझसे सही न जा सकेगी । जो लोग अछूतों के राजनैतिक अधिकारों की बात करते हैं, वे भारत को नहीं पहचानते और हिन्दू-समाज आज किस प्रकार बना हुआ है यह नहीं जानते ।

इसलिए मैं अपनी पूरी शक्ति से यह कहूँगा कि इस बात का विरोध करने वाला यदि मैं अकेला होऊँ तो भी मैं अपने प्राणों की बाजी लगा कर भी इसका विरोध करूँगा।''

17 अगस्त, 1932 को ब्रिटिश प्रधान मन्त्री का निश्चय घोषित हुआ जिसमें दलित जातियों को निर्वाचन का अधिकार देने की बात तो कही ही गयी, साथ ही आम निर्वाचन मे उम्मीदवारी करने और दोहरे वोट हासिल करने का अधिकार दिया गया। गान्धी जी गोल मेज सम्मेलन में इस नीति का विरोध कर ही चुके थे, उन्होंने इस निश्चय के विरुद्ध 20 सितम्बर से आमरण अनशन की घोषणा कर दी।

इस घोषणा ने पूरे भारतीय समाज को हिला कर रख दिया। हिन्दू-समाज में अस्पृश्यता का अन्त करने के लिए आन्दोलन आरम्भ हो गया। गान्धी जी की स्थिति से चिन्तित सभी वर्गों के नेताओं ने काफी प्रयत्न के बाद एक सर्वसम्मत योजना बनायी जिस पर डॉ० अम्बेदकर ने भी हस्ताक्षर किया। पूना पैक्ट के नाम से प्रसिद्ध इस योजना के अनुसार दलितों ने अलग निर्वाचन की माँग त्याग दी और उन्हें आम हिन्दू निर्वाचन में संरक्षण प्रदान किया गया।

यह घटना हिन्दू समाज के लिये कितनी महत्वपूर्ण थी, उसका पता इस बात से चलता है कि 25 सितम्बर 1932 को बम्बई में पं० मदन मोहन मालवीय के सभापतित्व में एक सभा हुई जिसमें निम्न निर्णय लिया गया—

''यह परिषद् निश्चय करती है कि अब भविष्य में हिन्दू जाति में किसी को जन्म से अस्पृश्य न समझा जायगा और जिन्हें अब तक अस्पृश्य समझा जाता रहा है उन्हें अन्य हिन्दुओं की भाँति ही कुओं, पाठशालाओं, सड़कों और अन्य सार्वजनिक संस्थाओं का उपयोग करने का अधिकार रहेगा। मौका मिलते ही इस अधिकार को कानूनी स्वरूप दे दिया जायगा और यदि इस प्रकार का रूप उसे स्वराज्य-पार्लियामेंट स्थापित होने से पहले तक न प्राप्त हुआ तो स्वराज्य-पार्लियामेंट का पहला कानून इस सम्बन्ध में होगा।

यह भी निश्चित किया जाता है कि सारे हिन्दू नेताओं का यह कर्त्तव्य होगा कि पुराने रिवाजों के कारण अस्पृश्य कहलाने वाले हिन्दुओं पर मन्दिर-प्रवेश आदि के सम्बन्ध में जो सामाजिक बन्धन लगा दिया गया है उसे वे सारे वैध और शान्तिपूर्ण उपायों के द्वारा दूर कराने की चेष्टा करें।''

आज प्रायः साठ वर्ष बाद इस प्रस्ताव के महत्व का आकलन करना कठिन है किन्तु उस समय की परिस्थितियों मे यह एक क्रान्तिकारी प्रस्ताव था जिसे हिन्दू समाज के विशिष्ट नेताओं ने स्वीकार किया। वस्तुतः इस क्रान्तिकारी परिवर्तन का मुख्य श्रेय डा० अम्बेदकर को है। यदि उन्होंने उग्र रुख न अपनाया होता तो हिन्दू समाज में ऐसा निर्णय लेने की स्थिति दो-तीन दशक बाद उत्पन्न हुई होती। सम्भव है तब तक हिन्दू-समाज का और अहित हो जाता।

डा० अम्बेदकर की मनोदशा समझना बहुत कठिन नहीं है। वे विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न और अत्यन्त संवेदनशील थे। अतः वे उस व्यवस्था में रहना जो जन्म के आधार पर उन्हे सबसे निचले सोपान पर रखे, स्वीकार नहीं कर सकते थे। उन्होंने हिन्दू धर्म त्याग कर बौद्ध बनना स्वीकार किया। डा० अम्बेदकर के मनोविज्ञान को ठीक से समझने के लिए यह प्रश्न उठाना आवश्यक है कि उन्होंने बौद्ध धर्म ही क्यों स्वीकार किया और यदि हिन्दू समाज से उन्हें इतनी घृणा थी तो उन्होंने पाकिस्तान के निर्माण का समर्थन करते समय हिन्दू बहुल भारत से अलग दलितों को वहाँ बसने की सलाह क्यों नहीं दी? इन प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत उद्धरण में खोजे जा सकते हैं।

बौद्ध धर्म अंगीकार करते समय 14 अक्टूबर 1956 को नागपुर में दिये गये उनके भाषण का एक अंश :—

भगवान् के धर्म को ब्राह्मणों ने भी अपनाया और शूद्रों ने भी। उन सभी भिक्षुओं को आदेश देते हुए भगवान् ने कहा था कि—

"हे भिक्षुओ ! आप लोग कई देशों और कई जातियों से आए हुए हैं जिस प्रकार आपके देश -प्रदेश में अनेक नदियाँ बहती है और उनका अलग अस्तित्व दिखाई देता है। जब ये सागर में मिलती है तब अपने पृथक अस्तित्व को खो बैठती है। वे सब समुद्र में समा जाती हैं। बौद्ध संघ समुद्र की ही भाँति है। इस संघ में सभी एक है और सभी बराबर है। समुद्र में गंगा या यमुना के मिल जाने पर उसके पानी को अलग पहिचानना कठिन है, इसी प्रकार आप लोगों के बौद्ध संघ में आने पर सभी एक है। सभी समान हैं।" इस प्रकार की बातें कहने वाला एक ही महापुरुष हुआ है और वह महापुरुष भगवान बुद्ध हैं।

जब लोग मुझ से यह प्रश्न पूछते हैं कि धर्मान्तर करने के लिए इतना समय क्यों लगाया ? इतने दिन तक मैं क्या कर रहा था ? ये प्रश्न महत्वपूर्ण हैं। धर्म के तत्वों को दूसरों को समझाना आसान काम नहीं है। एक मनुष्य का काम भी नहीं है। धर्म के सम्बन्ध में आप विचार करके देखेंगे तो मेरी बात आपको समझ में आ जायेगी। आज मेरे ऊपर जितनी जिम्मेदारी है, उतनी संसार में किसी पर नहीं है। अगर मैं ज्यादा साल जीवित रहा तो वह सब काम पूरा करके दिखाऊँगा। (बाबा साहेब जिन्दाबाद के नारे से आकाश गूँज उठा)।

कुछ लोग यह कहेंगे कि अछूतों के बौद्ध बनने पर क्या होगा, इस सम्बन्ध में मेरा इतना ही कहना है कि इस प्रकार का प्रश्न आप लोगों को नहीं पूछना चाहिये क्योंकि ऐसे प्रश्न धूर्ततापूर्ण हैं। अमीर लोगों को धर्म की आवश्यकता नहीं है। उनमें जो लोग ऊँचे पदों पर हैं उनके पास रहने के लिए अच्छा बंगला है। उनकी सेवा करने के लिए उनके पास धन है। उनके पास नौकर-चाकर हैं और उनके पास सब कुछ है। ऐसे लोगों को धर्म को अपनाने या उस पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

धर्म की आवश्यकता केवल गरीबों के लिए होती है। दुःखी और पीड़ित लोगों के लिए धर्म की जरूरत होती है। गरीब मनुष्य सदा ही आशा पर जीवित रहता है। जीवन का मूल आशा में है। अगर यह आशा नष्ट हो गई तो जीवन कैसे चलेगा ? धर्म हर एक को आशावादी बनाता है। गरीबों और पीड़ितों को सही सन्देश देता है कि "घबराने की आवश्यकता नहीं क्योंकि जीवन आशादायक है और होगा।" यही कारण है कि गरीब या पीड़ित व्यक्ति धर्म को चिपका कर रखता है।

जब यूरोप में ईसाई धर्म का प्रचार हुआ उस समय रोम के आस-पास सभी देशों की अवस्था बड़ी खराब थी। लोगों को पेट भर खाना भी नहीं मिलता था। उस समय पेट भरने के लिए लोगों में खिचड़ी बाँटी जाती थी। उस समय इन लोगों में ईसाई मत का प्रचार हुआ। दुःखी और पीड़ित लोग इस धर्म के अनुयायी बने। श्री गिबन ने एक बार कहा था कि यह ईसाई धर्म भिखारियों का धर्म है। ईसाई धर्म यूरोप का धर्म बन गया है। इसका जवाब देने के लिए श्री गिबन आज जीवित नहीं हैं। अगर वे जीवित होते तो शायद अपनी बात का जवाब वे खुद ही पा लेते।

कुछ लोग यह अवश्य कहेंगे कि यह बौद्ध धर्म भंगी-चमारों का धर्म है। ब्राह्मण लोग भगवान को भी "भो, गौतम !" कहकर पुकारते थे। ब्राह्मण भगवान् को इस प्रकार अपशब्द कह कर चिढ़ाया करते थे। लेकिन आप यह जानते हैं कि विदेशों में राम और कृष्ण और शंकर की मूर्तियों को खरीदने के लिए रखा जाए तो कोई नहीं खरीदेगा। अगर बुद्ध की मूर्ति रखी जाये तो एक भी मूर्ति नहीं बचेगी ? भारत में जो होना था वह बहुत कुछ होता रहा। कुछ बाहर भी दिखाओ। बाहर अगर किसी का नाम प्रसिद्ध है तो वह केवल भगवान बुद्ध का। फिर यह धर्म फैले बगैर कैसे रहेगा ?

हम अपने मार्ग से जरूर जायेंगे। वे अपनी राह से जाएँ। हमें नया रास्ता मिला है। यह आशा का प्रतीक है। अभ्युदय और उत्कर्ष का महान् मार्ग है। यह मार्ग नया नहीं है। इसे हम कहीं से लाए नहीं हैं। यह श्रेष्ठ मार्ग यहीं का है। यह भारतीय है। इस देश में 2000 वर्ष पूर्व भी बौद्ध धर्म था।। इसका हमें दुःख है कि हमने इस धर्म को पहिले ही क्यों नहीं अपनाया ? भगवान् बुद्ध के धर्म के तत्व सारे अजरामर है। फिर भी बुद्ध ने अपने सिद्धान्तों को अपरिवर्तनीय होने का दावा नहीं किया। इस धर्म में समयानुसार बदलने की शक्ति है। इतनी उदारता किसी अन्य धर्म में नहीं है।

इस देश से बौद्ध धर्म के नाश का मुख्य कारण इस देश पर मुसलमानों का अमानुषीय आक्रमण था। इस आक्रमण में हजारों मूर्तियाँ तोड़ी गई। भिक्षु मारे गए। इन आक्रमणों से घबड़ा-कर भिक्षु दूसरे देशों में भाग गये। कोई तिब्बत गए। कोई चीन चले गए। कोई कहीं गया और कोई कहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि यहाँ पर भिक्षुओं का अभाव हो गया। धर्म की रक्षा करने के लिए उपासक लोगों की आवश्यकता होती है। वायव्य सरहद प्रान्त में एक ग्रीक राजा था। उसका नाम था मिलिन्द (मिनांडर)। उसे धर्म चर्चा बड़ी पसन्द थी। उसने हिन्दू धर्म शास्त्रों के पंडितों के साथ कई बार वाद-विवाद करके उन्हें हराया था और कईयों को निरुत्तर कर दिया था। एक दिन उसने चाहा कि बौद्ध धर्म के विद्वानों के साथ वाद-विवाद करें। इसलिए अपने नौकरों को आदेश दिया कि जब कभी उनके राज्य में कोई बौद्ध धर्म का पंडित आए तो उसे उनके पास लाया जाए। तब स्थानीय बौद्ध मतावलम्बियों ने महा पंडित और धर्म-धुरन्धर भिक्षु नागसेन जी से प्रार्थना की कि वे राजा के पास जाकर वाद-विवाद में बौद्ध-धर्म का मण्डन करे। भिक्षु नागसेन बड़े विद्वान् थे। नागसेन और मिलिन्द में जो पारस्परिक वाद-विवाद हुआ उस सबको एक पुस्तका-कार रूप में छापा गया है। मिलिन्द ने एक प्रश्न किया कि धर्म की ग्लानि क्यों होती है ? नागसेन ने इसका उत्तर देते हुए इसके तीन कारण बताए। पहला यह कि सच्चा धर्म ही सदा बना रहता है। जिस धर्म के मूल में गम्भीरता नहीं होती वह धर्म केवल काल धर्म होता है और समय बीतने पर ऐसा धर्म नहीं टिकता। दूसरा कारण यह होता है कि जब धर्म प्रचार करने वाले विद्वान् ही नहीं रहते तब धर्म की ग्लानि होती है। ज्ञानी लोगों को धर्म ज्ञान की चर्चा करनी ही चाहिये। विरोधियों के वाद-विवाद का खण्डन करने के लिए धर्म के प्रचारक न हों तो भी धर्म की ग्लानि होती है। तीसरा कारण यह है कि धर्म और धर्म के तत्व विद्वानों के लिए होते हैं। साधारण लोगों के लिए मन्दिर या विहार होते हैं जहाँ पर जाकर जनता अपनी श्रेष्ठ विभूतियों की पूजा करती है।

आप लोगों को इस महान् बौद्ध धर्म को स्वीकार करते हुए इन बातों का ध्यान रखना चाहिए। बौद्ध धर्म के तत्व केवल कुछ समय के लिए है; ऐसा कभी नहीं समझना चाहिए। आज

2500 वर्षों के बाद भी बुद्ध के तत्वों को सारा संसार मानता है । अमेरिका में बुद्ध धर्म के अनुयायियों की 2000 संस्थाएँ हैं । इंग्लैण्ड में तीन लाख रुपये खर्च करके बौद्ध मन्दिर बनाया गया है । जर्मनी में तीन चार हजार बौद्ध संस्थाएँ हैं । बुद्ध के तत्व अजरामर हैं फिर भी बुद्ध ने अपने तत्वों के महान् होने का दावा नहीं किया । और न उन्होंने कभी यह कहा कि उनका धर्म ईश्वरीय है । भगवान् बुद्ध ने तो यही कहा था कि मेरा पिता और मेरी माता दोनों सामान्य मनुष्य की भाँति हैं । जिन्हें यह धर्म अच्छा लगे वे इसे अपनाएँ । क्योंकि इतनी उदारता की बातें आपको किसी दूसरे धर्म में नहीं मिलेंगी ।

दूसरे धर्मों और बौद्ध धर्म में महान् अन्तर है । बौद्ध धर्म की महान् और मूल आधार की बातें आपको दूसरे धर्मों में नहीं मिलेंगी क्योंकि दूसरे धर्म मनुष्य और ईश्वर के गहरे सम्बन्ध को बताते हैं । दूसरे धर्म कहते हैं कि ईश्वर ने संसार की सृष्टि की है । उसी ने ही आकाश, वायु, चन्द्र, सूरज और सब कुछ पैदा किया है । ईश्वर ने सब कुछ हमारे लिए कर दिया है । कुछ शेष नहीं रखा है । इसलिए हम उस ईश्वर की उपासना और भजन ही करते रहें । ईसाई धर्म के अनुसार मरने के बाद एक निर्णय का दिन (Day of Judgment) होगा । उसी के निर्णय अनुसार सब कुछ निर्धारित होगा ।

ईश्वर और आत्मा के लिए बौद्ध धर्म में कोई स्थान नहीं है । भगवान् बुद्ध ने कहा कि संसार में सब जगह दुःख ही दुःख है । 90 प्रतिशत लोग दुखी हैं, पीड़ित हैं । दुःख से पीड़ित गरीब लोगों का उद्धार करना ही बौद्ध धर्म का मुख्य ध्येय है । कार्लमार्क्स ने भगवान् बुद्ध से ज्यादा कुछ भी नहीं कहा है । भगवान् ने जो कुछ कहा है वह सब सरल और सीधा मार्ग है ।

भाइयों और बहिनो ! जो कुछ मुझे कहना था वह सब कुछ मैंने कह दिया । यह धर्म सबसे अच्छा धर्म है । उसमें कोई दोष नहीं है । हिन्दू धर्म में कुछ ऐसे तत्व हैं कि जिनसे किसी को उत्साह नहीं मिल सकता । हजारों वर्षों से लेकर आज तक अपने समाज में किसी को भी विद्वान् नहीं बनने दिया गया । आप लोगों के सामने मुझे अपनी बचपन की बात बताते हुए किसी प्रकार की झिझक नहीं होती । मेरे स्कूल में एक अब्राह्मण (मराठा) औरत थी । वह स्वयं अनपढ़ थी परन्तु मुझे कभी छूती न थी । मेरी माँ मुझको कहती थीं कि मैं बड़े लोगों को मामा कह कर पुकारूं । पोस्टमैन को 'मामा'' कहकर पुकारा करता था । स्कूल में एक दिन मुझे प्यास लगी । इसके लिये मैंने अपने मास्टर से कहा । मास्टर ने चपरासी को बुला कर कहा कि इसे नल पर जाकर पानी पिला लाओ । चपरासी ने नल खोला तो मैंने पानी पिया । अगर कभी चपरासी न हुआ तो कई दिन तक पानी पीने को ही नहीं मिलता था । प्यासा ही घर वापस आता और घर पर ही आकर प्यास को बुझाता । जब मैं पढ़ कर वापस आया तब मुझे डिस्ट्रिक्ट जज बनने के लिए कहा गया । लेकिन इस रस्सी को मैंने अपने गले में इसलिये नहीं बंधवाया कि मेरे नौकर हो जाने पर मेरे लोगों की सेवा कौन करेगा ? इसी विचार को ध्यान में रखते हुए मैं नौकरी के चक्कर में नहीं पड़ा ।

व्यक्तिगत रूप से इस देश की किसी भी 'रूढ़ि' या बात का विरोध करना मेरे लिये कठिन नहीं है । आप लोगों के सिर पर वैश्यों, क्षत्रियों और ब्राह्मणों ने पहाड़ खड़ा किया हुआ है । उसको किस प्रकार उलटा जाये या तोड़ा जाये यह एक वास्तविक प्रश्न है ? इसलिए मैं चाहता हूँ कि इस धर्म का पूर्ण ज्ञान कराऊँ । यह मेरा कर्त्तव्य भी है । इस कार्य के लिए मैं पुस्तकें लिखकर

और आप लोगों की शंकायें दूर कर के पूर्ण ज्ञान प्राप्त कराऊँगा। आज आप मुझ पर विश्वास रखकर चलिये।

आप पर अब काफी जिम्मेदारी आ पड़ी है। यह बड़ी भारी चीज है। आप लोगों को ऐसे काम करने चाहिए जिससे सभी आपका आदर करें। आप इस धर्म को ऐसा न समझें कि आपने गले में एक मिट्टी का घड़ा बाँध लिया है। बौद्ध धर्म की दृष्टि से भारत की भूमि अब सुनसान जंगल की भाँति है। इसलिए आपका परम कर्तव्य है कि आप इस पवित्र धर्म को उत्तम रीति से पालने की प्रतिज्ञा करें, अन्यथा इस धर्म-परिवर्तन की निन्दा होगी। आज आप सभी प्रतिज्ञा करें कि आप सब बौद्ध न केवल अपना, बल्कि अपने साथ अपने देश का और इसके साथ-साथ सारे संसार का भी उद्धार करेंगे। संसार का उद्धार बौद्ध धर्म से ही होगा। संसार में जब तक न्याय को स्थान नहीं मिलेगा तब तक शान्ति नहीं हो सकती।

□ □

"मैं लड़ाई का पक्षपाती हूँ"

□

गणेशशंकर विद्यार्थी

['प्रताप' के यशस्वी सम्पादक गणेशशंकर विद्यार्थी (1890-1931) की जन्म शती के अवसर पर हम उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। पत्रकारिता और राजनीति के क्षेत्रों में उन जैसा यश बिरलों को मिलता है। कानपुर के हिन्दू-मुस्लिम दंगे को शान्त करने के प्रयत्न में उनकी मृत्यु पर शास्त्री जी ने 'यंग इण्डिया' में लिखा, "गणेशशंकर विद्यार्थी को ऐसी मृत्यु मिली जिस पर हम सबकी स्पर्धा है। उनका खून अन्त में दोनों मजहबों को जोड़ने के लिये सीमेंट का काम करेगा। कोई समझौता हमारे हृदयों को आपस में नहीं जोड़ सकता। पर गणेशशंकर विद्यार्थी ने जिस वीरता का परिचय दिया है, वह अन्त में पत्थर से पत्थर हृदय को भी पिघला देगी और पिघलाकर एक में मिला देगी।"

समकालीन समाज में विद्यार्थी जी की क्या प्रतिष्ठा थी, इसका मार्मिक उल्लेख स्वर्गीय बनारसी दास चतुर्वेदी ने अपने एक लेख में किया था। उन्होंने लिखा, "आज उस दीनबन्धु के लिये किसान रो रहे हैं। कौन उनकी उदर-ज्वाला को शान्त करने के लिये स्वयं आग में कूद पड़ेगा ? मजदूर पछता रहे हैं। कौन उन पीड़ितों का संगठन करेगा ? मवेशीखानों से भी बदतर देशी राज्यों के निवासी आज अश्रुपात कर रहे हैं। कौन उन मूक पशुओं को वाणी प्रदान करेगा ? ग्रामीण अध्यापक रुदन कर रहे है। कौन उनका दुखड़ा सुनेगा और सुनवायेगा ? राजनीतिक कार्य-कर्ता रो रहे हैं। कौन उन्हें आश्रय देकर स्वयं आफत में फंसेगा, उनके कन्धे से कन्धा मिलाकर स्वातन्त्र्य-संग्राम में आगे बढ़ेगा ? और एक कोने में पड़े हुए पत्रकार बन्धु भी अपने को निराश्रित पाकर चुपचाप चार आँसू बहा रहे हैं। आपातकाल में कौन उन्हें सहारा देगा ? किससे वे दिल खोल कर बात कहेंगे, किसे वे अपना बड़ा भाई समझेंगे और कौन अपने छुटभइयों का इतना ख्याल रखेगा ?"

1923 में फतेहपुर मे आयोजित राजनीतिक सम्मेलन में उनके भाषण पर सरकार ने आपत्ति की और मुकदमा चला दिया। सरकारी वकील के अनुसार विद्यार्थी जी ने अपने भाषण में कहा था कि मैं गांधी जी को अहिंसा में सिद्धान्ततः विश्वास नहीं करता, लेकिन उसको उचित नीति मान कर उसका पालन करता हूँ। इस मुकदमे की दूसरी पेशी का विवरण 26 मार्च 1923 के 'साप्ताहिक प्रताप' में प्रकाशित हुआ था। विद्यार्थी जी की दृढ़ता, अपने विचारों पर आस्था और भाषा पर अधिकार की बानगी के रूप में यह विवरण प्रस्तुत है।]

बीस मार्च 1923 मंगलवार को ठीक एक बजे श्रद्धेय गणेश जी के मुकदमे की दूसरी पेशी शुरू हुई। इस दिन भी मजिस्ट्रेट ने सिर्फ पन्द्रह व्यक्तियों को कार्यवाही देखने दी। पिछली पेशी में लोग मजिस्ट्रेट के आने पर अपनी-अपनी जगहों पर बैठे रहे थे, लेकिन श्रद्धेय गणेश जी के आते ही उनका सम्मान करने के लिए खड़े हुए थे। इसलिए, इस बार अपनी शान की रक्षा के लिए

मजिस्ट्रेट ने लोगों को अदालत में अपने आने के बाद आने दिया। मुकदमा आरम्भ होते ही गणेश जी ने अपना लिखा हुआ बयान पेश कर दिया।

गणेश जी का बयान,

सरकारी रिपोर्टर ने मेरे व्याख्यान की जो रिपोर्ट की है वह अपूर्ण, गलत और कहीं-कहीं बिल्कुल विकृत है। मेरा मतलब यह नहीं है कि रिपोर्टर ने जानबूझ कर महज इसलिए, उसमें वे शब्द घुसेड़ दिये (जो मैंने नहीं कहे थे) कि जिससे मेरे ऊपर राजद्रोह का मुकदमा चल सके। परन्तु यह स्पष्ट है कि जिस भाषा में मैंने व्याख्यान दिया था, उस भाषा का उसे बहुत ही कम ज्ञान है और वह मेरी बातों का मतलब समझने तथा उनकी प्रासंगिकता और उपयुक्तता जानने में असमर्थ रहा। मेरे सवालों के जवाब में उसने यह मंजूर किया है कि उसने कई संस्कृत शब्द समझ में न आने के कारण छोड़ दिये। अपनी रिपोर्ट में भी उसने जिन वाक्यों और शब्दों की रिपोर्ट ठीक समझ कर की है, उसके अर्थ वह नहीं बता सका। वास्तव में जिन लोगों को विद्वान वक्ताओं और लेखकों द्वारा लिखी तथा बोली जाने वाली हिन्दी-भाषा का कामचलाऊ ज्ञान भी है, वे तुरन्त यह देख लेंगे कि रिपोर्टर ने कई ऐसे शब्द लिख दिये हैं जिनका कोई अर्थ ही नहीं, और जो वास्तव में हिन्दी और क्या अन्य भाषा, किसी में भी नहीं पाये जाते। कई जगहों में उसने ऐसे शब्द लिख डाले हैं जिनका प्रसंगानुसार कोई अर्थ नहीं होता। बात यह मालूम होती है कि प्रत्यक्षतः रिपोर्टर जिन शब्दों को सुन या समझ न सका, उनकी जगह उसने प्रत्यक्षतः दूसरे शब्द अटकल से लिख दिये। वास्तव में रिपोर्टर ने व्याख्यान की जैसी रिपोर्ट पेश की है वह ऐसे सम्बन्धहीन वाक्यों का ढेर मात्र है, जो एक-दूसरे के साथ मेल नहीं खाते। कई वाक्य कुछ ऐसे शब्दों का संग्रह मात्र हैं जिनका कोई भी अर्थ नहीं होता। मैं भद्दा वक्ता नहीं। मैं ठीक-ठाक और सिलसिलेवार बोल सकता हूँ; यह बात रिपोर्टर ने स्वयं स्वीकार की है। रिपोर्टर ने जो कुछ कहा है उसके प्रतिकूल यह भी स्पष्ट है कि वह बहुत अच्छी तरह से शार्टहैंड रिपोर्टिंग नहीं जानता और उसके लिए यह असम्भव था कि मुझ जैसे शीघ्र वक्ता के भाषण की पूर्ण रिपोर्ट ले लेता। न केवल मेरे भासण के कई वाक्यों और कई मुख्य अंशों की रिपोर्ट भी नहीं की गयी बल्कि जिन वाक्यों की रिपोर्ट की गयी है उनमें से भी महत्वपूर्ण शब्द और शब्द समूह छोड़ दिये गये हैं और रिपोर्टरों की आम आदत के मुताबिक कहीं-कहीं तो रिपोर्टर ने अपनी अक्ल के मुताबिक मेरे वाक्यों का मतलब ठीक करने के लिए अपने शब्द जोड़ दिये हैं। इसलिए मेरे रिपोर्ट किये हुए भाषण से जो आम असर पड़ता है वह बहुत ही भ्रमोत्पादक है। रिपोर्टर ने शब्दों के जिस संग्रह की रिपोर्ट किया है उसे मेरे भाषण की रिपोर्ट कहना भाषण की विडम्बना करना है। असल में रिपोर्ट में मेरे भाषण को संक्षेप में लेने की कोशिश की गयी है, सो भी एक ऐसे मनुष्य द्वारा जो न तो जल्दी-जल्दी रिपोर्ट ही ले सकता था और न भाषण को ही समझ सकता था। उदाहरण के लिए रिपोर्ट में दिये गये नीचे के वाक्यों का अर्थ क्या हो सकता है?

1. देश में जितनी शिकायतें हैं उनको संचालित करने की कोशिश करूँगा।
2. मित्रों से कहना चाहता हूँ कि असहयोग उनकी सहानुभूति नहीं है।
3. जब तुम अहिंसा के बल से स्वराज्य लेना चाहते हो तो अब न कहें कि हम नहीं कर सकते।
4. उन सारी शिकायतों को जो इस तरह उनके सारे आदमियों को पहुँचती हैं, सबका मुखालिफ हूँ।

5. जब माता के बच्चे जने तो घुल के साथ यह कह दें।
6. आज कौंसिल में विरोध है कल तिजारत में विरोध होगा।
7. लड़ाई चुप की नहीं है।
8. मैं माफी चाहता हूँ।

अदालत के जवाबों में मैंने अपने भाषण के कुछ आवश्यक वाक्यों को जहाँ तक मुझे याद था, वहाँ तक सुधार दिया। मैंने कुछ वाक्यों का जो यद्यपि भद्दी तरह से रिपोर्ट किये गये हैं, परन्तु जिनको शायद सरकार ने मेरे खिलाफ राजद्रोह का अभियोग चलाने का आधार माना है, अर्थ कर दिया है। अगर मेरे ऊपर यह आरोप किया गया हो कि मैं मौजूदा नौकरशाही से जरा भी प्रेम नहीं करता, मैं अपने श्रोताओं के मन में उसके काम के प्रति असंतोष उत्पन्न करना चाहता था, और चाहता था उसके मन में वर्तमान शासन प्रणाली को दूर करने की उत्कट इच्छा उत्पन्न करना, तो स्वीकार करता हूँ कि मैं अपराधी हूँ। मैंने अपने भाषण में कहा था और मैंने उस समय जो भाव प्रकट किया था उसे मैं आज भी ठीक समझता हूँ। उन तमाम हानिकर प्रभुत्वों को हटा देना चाहिए, जो लोगों की न्यायोचित आकांक्षाओं का दमन करते हैं और उसको बन्धनों में जकड़ रखने में मदद देते हैं।

फिर चाहे ऐसा प्रभुत्व, शासक नौकरशाही का हो या जमींदारों का, धनवानों का हो या ऊँची जातियों का। परन्तु अगर मेरे ऊपर यह आरोप है तो जैसा कि मालूम होता है कि मैंने लोगों को उपद्रव के लिए उत्तेजित किया है तो मैं पूर्णतया उसका प्रतिवाद करता हूँ। सभा में वास्तव में जो कुछ हुआ, वह यह कि मेरे मित्र पंडित गौरीशंकर मिश्र ने जो कांग्रेस के अपरिवर्तनवादी कहे जाने वाले दल के हैं, मेरी राय पर जो कौंसिलों के पक्ष में था, हमला कर दिया। इस सम्बन्ध में उन्होंने अहिंसा और अप्रतिरोध के सिद्धान्त पर जोर दिया। ऐसा मालूम पड़ता था कि उनके निज के विचार में कौंसिल के चुनाव पर खड़े होना एक तरह की हिंसा है। मिश्र जी ने दो घण्टे तक लम्बा भाषण दिया। उन्होंने हिंसा और अहिंसा के ढंग के गुण-अवगुणों की विस्तृत सैद्धांतिक विवेचना की। यह महत्वपूर्ण बात याद रखनी चाहिए कि इस विवाद में हिंसा शब्द का प्रयोग हिन्दू नीति-शास्त्र के अनुसार दूसरे को किसी प्रकार का शारीरिक या मानसिक कष्ट पहुँचाने के अर्थ में किया गया था। पंडित गौरीशंकर मिश्र ने 'प्रेम' और 'अहिंसा' की दार्शनिक व्याख्या करते हुए कहा कि प्रेम और अहिंसा दार्शनिक अर्थ में स्वतन्त्रता लेने के लिए की जाने वाली हर तरह की हिंसा के विरुद्ध हैं। संक्षेप में उन्होंने राजनीति में पूर्ण प्रेम के साथ किसी भी प्रकार का कष्ट पहुँचाने की समस्त इच्छाओं से मुक्त असहयोग के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। अपरिवर्तनवादी होने के कारण उन्होंने कौंसिलवादी दल पर यह समझ कर हमला किया, मानो उनकी राय में वह दल महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित अहिंसात्मक असहयोग के सिद्धान्त के विरुद्ध कुछ करने को तैयार था। मैं पंडित गौरीशंकर मिश्र के बाद बोला और मेरे भाषण का तात्पर्य समझने के लिए यह जरूरी है कि पंडित गौरीशंकर मिश्र का भाषण पढ़ लिया जाये। इसीलिए मैंने अदालत से कहा था कि उनके भाषण की रिपोर्ट भी रिकार्ड में होनी चाहिए थी परन्तु अदालत ने यह बात न मानी। हिंसा और अहिंसा के सम्बन्ध में मैंने जो कुछ कहा उसे उस विवाद में एक भाषण स्वरूप पढ़ना चाहिए जिसको पंडित गौरीशंकर मिश्र ने शुरू किया। अहिंसात्मक असहयोग के प्रति मेरा व्यवहार क्या है, यह सरकारी रिपोर्ट में दिये गये इस वाक्य से पूर्णतया मालूम हो जाता है। मैं नॉन-वायलेंस (अहिंसा) को शुरू से अपनी पालिसी मानता रहा हूँ। धर्म नहीं मानता

रहा। मैंने अपने व्याख्यान में यह दिखाया कि मनसा और कर्मणा, अहिंसा साधारण मनुष्यों का सहज स्वभाव नहीं है और इसीलिए राजनैतिक संग्राम में उसे अपना साधारण हथियार नहीं बनाया जा सकता। जहाँ मैंने यह कहा है कि मैं लड़ाई का पक्षपाती हूँ, वहाँ स्पष्टत: मेरा मतलब यह है कि राजनीतिक संग्राम चाहता हूँ, यह जरूरी नहीं कि यह संग्राम प्रेम और अहिंसा के उस संग्राम पर आधारित हो जिसकी व्याख्या मिश्र जी ने की है। मुझमें और पंडित गौरीशंकर मिश्र में जो सैद्धान्तिक-राजनीतिक विवेचना का विवाद हो रहा था, उसी विवाद में अपने सिद्धान्त को अधिक स्पष्ट करने के लिए मैंने यहाँ तक कह डाला कि अगर ब्रिटिश सत्ता मेरे सामने प्रतिमा का रूप धारण करके आये तो मैं उसकी उपासना नहीं करूंगा बल्कि उसे खण्डित करके प्रवाहित कर दूंगा। इसके बाद दूसरे ही वाक्य में मैंने अवांछनीय सभाओं को जैसे जमींदारों, धनवानों और ऊँची जातियों की सभा का जिक्र किया और कहा कि मैं इन सभी को हटा दूंगा। यह सवाल तो उठ ही नहीं सकता कि मैंने लोगों को शारीरिक हिंसा करने के लिए उत्तेजित किया, क्योंकि मैं कांग्रेसमैन हूँ। मैंने अपने भाषण में यह भी कह दिया था कि यद्यपि मैं अहिंसा को धर्म नहीं मानता तथापि मैं अपनी वर्तमान अवस्था में राजनीतिक संग्राम का सर्वोत्तम साधन मानता हूँ। परन्तु जब मेरे एक मित्र यहाँ तक कह डालते हैं कि कौंसिलों में जाना भी हिंसा है तब मुझे उस धारणा की परीक्षा करने के लिए जिस पर यह सिद्धान्त टिका हुआ है, इस प्रकार की अहिंसा के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलन्द करनी पड़ती है। हिंसा, अहिंसा, अप्रतिरोध और राजनीतिक संग्राम कौंसिलों में जाना अहिंसा सिद्धान्त के विरुद्ध है, या नहीं इत्यादि के सम्बन्ध में जो समस्त वाद-विवाद हुआ, वह सैद्धांतिक था। मुझमें और पंडित गौरीशंकर मिश्र में केवल सिद्धान्तों पर ही बहस हुई। लोगों को हिंसा के लिए उत्तेजित करने का विचार तो मेरे पास तक नहीं फटक सकता, क्योंकि मेरी दृष्टि से इससे अधिक अहमकाना और आत्मघातक बात और कोई हो ही नहीं सकती। सरकार की तरफ से सिर्फ देवीदयाल गैर सरकारी गवाह के तौर पर पेश किया गया है। उसका कहना है कि उसके ऊपर मेरे व्याख्यान का यह असर पड़ा कि मैंने लोगों को हिंसा के लिए उत्तेजित किया। मैं इस व्यक्ति का इत्मीनान नहीं करता। मैं अनुभव करता हूँ। मेरे श्रोताओं पर यह असर हरगिज़ न पड़ना चाहिए था! देवीदयाल की बातों से प्रकट होता है कि वह पुलिस का जीव है। मुकदमों में पुलिस अक्सर इससे गवाही दिलाती है। कांग्रेस आफिस के सामने बोर्ड पर कांग्रेस के जो नोटिस लिखे रहते हैं पुलिस उसकी नकल ले लेती है। इस नकल पर यह दस्तखत किया करता है। इसे गोला-बारूद बेचने का लाइसेंस भी मिला हुआ है। इस प्रकार यह एक ऐसा आदमी है जो पुलिस ने मेरे बरखिलाफ़ अपनी इच्छानुकूल बातें कहलवाने के लिये पेश किया। मेरी अन्तरात्मा मुझसे साफ-साफ कहती है कि मेरे मन में लोगों को हिंसा के लिये उत्तेजित करने का इरादा न था। परन्तु यदि मेरे श्रोताओं में से एक के दिल पर भी वास्तव में यह असर पड़ा है तो मैं हृदय से दुखी हूँ। अगर मुझे सच-सच यह मालूम हो जाये कि मैंने गलती की तो मैं तुरन्त उसे स्वीकार कर लूंगा। अगर मेरे कोई वाक्य लोगों को हिंसा करने के लिये उत्तेजित करने वाले होते तो मैं सहर्ष उन्हें वापस ले लेता, क्योंकि मैं कांग्रेस का एक विनम्र परन्तु कट्टर सदस्य हूँ और लोगों को हिंसा के लिये उत्तेजित करना राष्ट्रीय महासभा के सिद्धान्त के विरुद्ध है!

निःसन्देह मैं लड़ाई का पक्षपाती हूँ और टालसटाय और महात्मा गांधी की पूर्ण अहिंसा को जिस अर्थ में वे धार्मिक सिद्धान्त मानते हैं उस अर्थ में मैं इस पर विश्वास नहीं करता। परन्तु मैं सशस्त्र क्रांति करने पर किसी को शारीरिक हानि पहुँचाने की हिंसा को भी अपनी वर्तमान अवस्था में ठीक नहीं समझता। हमारी वर्तमान व्यवस्था में तो उसका विचार करना तक मूर्खता-

पूर्ण और आत्मघातक है। मैंने जो कुछ कहा है वह सब केवल अपनी स्थिति साफ करने के लिए कहा है, किसी को संतुष्ट या असंतुष्ट करने के लिये नहीं। जहाँ तक राजद्रोह से सम्बन्ध है, वहाँ तक मुझे एक शब्द भी नहीं कहना। मैं यह जानता हूँ कि हमारे देश मे दफा 124-ए का प्रयोग कितनी गैर-जिम्मेदारी के साथ किया जाता है। किसी भी सच्चे राजनीतिक कार्यकर्त्ता के लिए क्षण भर के लिये भी यह अनुभव करना असम्भव है कि वह इस धारा की व्यापक शब्दावली और उसके काम में लाये जाने वाले भाव से बचा हुआ है। मुझे छूटे हुए अभी दस महीने नहीं हुए कि मेरी राजनीतिक क्रियाओं को बन्द करने का एक अवसर तलाश लिया गया। मुझे इस बात पर कोई आश्चर्य नहीं। मैं उस नौकरशाही से किसी प्रकार की आशा नहीं रखता जिसके विरुद्ध हमारा सारा राजनीतिक संग्राम हो रहा है। परमात्मा मुझ में इतनी शक्ति दे कि मेरे ऊपर जो कुछ आये उसे मैं प्रसन्नतापूर्वक सह लूँ और कठिन से कठिन अवसर पर भी जनता और मातृभूमि की सेवा के आदर्श को न भूलूँ।

सरकारी वकील की बहस

गणेशजी के बयान के बाद सरकारी वकील की मजेदार बहस हुई। उन्होंने कहा कि रिपोर्ट गलत है इस बात का सबूत अभियुक्त को देना चाहिये। उन्होंने कहा कि व्याख्यान सुनने वाले लोगों मे अनपढ़ देहाती भी थे। व्याख्यान आन्दोलन के बीच में जिला राजनीतिक परिषद् के समय पर दिया गया था जब लोगों के दिमाग़ गरम थे। उन्होंने यह भी कहा कि पं० गणेशशंकर विद्यार्थी प्रभावशाली वक्ता हैं। श्रोताओं पर उनके व्याख्यान का बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। उनमें इतनी शक्ति है कि वे अपने भाषण द्वारा जनता को चाहे जिस तरफ मोड़ लें। वे अपने श्रोताओं को खूब पहचानते है। उनके भाषण में प्रवाह होता है। भाषा तो उनके सामने हाथ जोड़े खड़ी रहती है। "सरकारी रिपोर्ट को बिलकुल ठीक मान कर उन्होंने गणेश जी के भाषण के विकृत वाक्यों के बड़े ही विचित्र और हास्यास्पद अर्थ किये। कहा, विद्यार्थी जी लोगों को संगठित हिंसा के लिए उत्तेजित कर रहे थे।"

सरकारी वकील के अन्त में कुछ कहने पर मजिस्ट्रेट ने गणेश जी से पूछा कि आपने अपने बयान में सिर्फ यही कहा है कि "अगर मेरे श्रोताओं मे से एक भी व्यक्ति के दिल पर यह असर हो कि मैंने भाषण में लोगों को हिंसा के लिए उत्तेजित किया तो मुझे हार्दिक दु:ख है।"

गणेश जी ने कहा—"बिल्कुल यही।" फिर मजिस्ट्रेट ने कहा कि "राजद्रोह फैलाने के विषय में तो आपको दुख नहीं ?"

गणेश जी ने हँस कर उत्तर दिया—"हरगिज़ नहीं"। अन्त में गणेश जी ने कहा कि सरकारी वकील ने मेरे वाक्यों का बड़ा ही हास्यजनक अर्थ किया है। मैं समझता हूँ कि मेरे बयान मे इतना काफी मसाला था कि उनको अपना मुकदमा साबित करने का कष्ट न उठाना पड़ता।

इसके घण्टे भर बाद मजिस्ट्रेट ने गणेश जी को एक साल की कैद की सजा और सौ रुपया जुर्माना, जुर्माना न देने पर तीन महीने की कैद की सजा का हुक्म सुना दिया। "वन्दे मातरम्, अल्ला हो अकबर", विद्यार्थी जी की जयघोष से वायुमण्डल गूँज उठा और गणेश जी मोटर लारी में बिठाकर जेल ले जाये गये।

उनको गैर राजनीतिक यानी साधारण कैदी करार दिया गया। चलते समय स्वामी शिवानन्द जी के बार-बार कहने पर उन्होंने लोगों को यही सन्देश दिया "पाखण्डी मत बनो।"

□ □

मर्यादित, उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व

□

डा० राममनोहर लोहिया

[समाजवादी आन्दोलन के प्रमुख नेता होने के कारण डा० राम मनोहर लोहिया का राजनीतिक रूप ही उभर कर हमारे मन में बैठा। वे कितने बड़े और मौलिक विचारक थे, यह बात उनके अनेक प्रशंसकों के मन में भी रेखांकित नहीं हो पायी है। आचार्य नरेन्द्रदेव की तरह उनका समाजवाद भी भारत की मिट्टी से जीवनी शक्ति प्राप्त करता है। उन्होंने भारत की परम्परा और विश्वासों का तिरस्कार नहीं किया। लोहिया जी ने इनमें भारतीय लोक चेतना का दर्शन किया और अपने निराले अंदाज में इनकी व्याख्या की। इसीलिये वे नदियाँ साफ करने, तीर्थों का उद्धार करने रामायण मेला आयोजित करने की बात सोच सके। राम, कृष्ण और शिव के सम्बन्ध में प्रस्तुत लेख भारत की परम्परा को समझने की उनकी अनूठी दृष्टि का उदाहरण है।]

इस विषय पर आप में से कई सोच सकते हैं, तो, शायद, कुछ खयाल कर सकते है कि धर्म पर और हिन्दू धर्म पर बातें होंगी। ऐसा नहीं।

राम और कृष्ण और शिव हिन्दुस्तान की उन तीन चीजों में हैं--मैं उनको आदमी कहूँ या देवता, इसके तो खास मतलब नहीं होंगे—जिनका असर हिन्दुस्तान के दिमाग पर ऐतिहासिक लोगों से भी ज्यादा है। गौतम बुद्ध या अशोक ऐतिहासिक लोग थे। लेकिन उनके काम के किस्से इतने ज़्यादा और इतने विस्तार मे आपको नही मालूम है, जितने कि राम, कृष्ण और शिव के क़िस्से। कोई आदमी वास्तव में हुआ या नहीं, यह इतना बड़ा सवाल नहीं है, जितना यह कि उस आदमी के काम किस हद तक, कितने लोगों को मालूम हैं, और उनका असर है दिमाग़ पर। राम और कृष्ण तो इतिहास के लोग माने जाते हैं; हों या न हों; यह दूसरे दर्जे का सवाल है। मान लें थोड़ी देर के लिए कि वे सिर्फ उपन्यास के लोग हैं। शिव तो केवल एक किवदन्ती के रूप मे प्रचलित हैं। यह सही है कि कुछ लोगों ने कोशिश की है कि शिव को भी कोई समय और शरीर और जगह दी जाए। कुछ लोगों ने कोशिश की है यह साबित करने की कि वे उत्तराखण्ड के एक इंजीनियर थे जो गंगा को ले आये थे हिन्दुस्तान के मैदानों में।

यह छोटे-छोटे सवाल हैं कि राम और कृष्ण और शिव सचमुच इस दुनिया में कभी हुए या नहीं। असली सवाल तो यह है कि इनकी ज़िन्दगी के क़िस्सों के छोटे-छोटे पहलू को भी 5, 10 20, 50 हजार आदमी नहीं बल्कि हिन्दुस्तान के करोड़ों लोग जानते है। वह हिन्दुस्तान के

इतिहास के किसी और आदमी के बारे में नहीं कहा जा सकता। मैं तो समझता हूँ, गौतम बुद्ध का नाम भी हिन्दुस्तान में शायद 25 सैकड़ा से ज्यादा लोगों को मालूम नहीं होगा। उनके क़िस्से जानने वाले तो मुश्किल से हज़ार में 1-2 मिल जाएँ तो मिल जाएँ। लेकिन राम और कृष्ण और शिव के नाम और उनके क़िस्से तो सबको मालूम हैं। दिमाग़ पर असर सिर्फ़ इसलिए नहीं है कि उनके साथ धर्म जुड़ा हुआ है। असर इसलिए है कि वे लोगों के दिमाग में एक मिसाल की तरह आ जाते हैं, और जिन्दगी के हरेक पहलू और हरेक काम-काज के सिलसिले में वे मिसालें आँखों के सामने या दिमाग़ की आँखों के सामने खड़ी हो जाती हैं। तब, चाहे जान-बूझ कर, और चाहे अनजान में, आदमी उन मिसालों के मुताबिक खुद भी अपने कदम उठाने लग जाता है। अगर मिसाल सोच-समझ कर दिमाग़ के सामने आए तो उसका इतना असर नहीं पड़ता, जितना बिना सोचे दिमाग़ में आ जाए। बिना सोचे कोई मिसाल दिमाग में आ जाए, सिर्फ़ यही नहीं कि वह मिसाल हो, बल्कि छोटे-छोटे क़िस्से भी याद हैं जैसे कि राम ने परशुराम को क्या कहा और किस वक़्त कब कितना कहा—यह एक-एक क़िस्सा मालूम है। या जब शूर्पणखा आयी थी तो राम और लक्ष्मण और शूर्पणखा में क्या-क्या बातचीत हुई, या जब भरत आये राम को वापस ले जाने के लिए तब उनकी आपस में क्या-क्या बातें हुईं—इन सबकी एक-एक तफ़सील, इसने यह कहा, और उसने यह कहा, मालूम है। इसी तरह से कृष्ण और अर्जुन की बातचीत और इसी तरह से शिव के क़िस्से हिन्दुस्तानी के दिमाग़ की सतह पर खुदे हुए रहते हैं। एक तो हुआ क़िस्सों का मालूम होना, दूसरे क़िस्सों का दिमाग़ की सतह पर खुद जाना, तो फिर वह हमेशा मिसाल की तरह दिमाग़ की आँखों के सामने रहते हैं, और किसी भी काम पर उनका असर पड़ा करता है।

यों, हरेक देश का अपना इतिहास होता है। इतिहास की घटनाएँ हैं, राजनीतिक, साहित्यिक, और दूसरी। इतिहास की घटनाओं की एक लम्बी जंजीर होती है और उनको ले कर कोई सभ्यता और संस्कृति बना करती है। उनका दिमाग़ पर असर रहता है। लेकिन इससे अलग, एक और ज़ंजीर, और वह क़िस्से-कहानियों वाली, हितोपदेश और 'पंचतंत्र' वाली। मैं समझता हूँ आप में से करीब-करीब सभी को मालूम होगा कि किस तरह गंगदत्त नाम के मेढक ने प्रियदर्शन नाम के साँप को एक राजदूत के जरिये कहलाया था कि—किस्से बड़े सुहावने और नाम बड़े सुहावने हुआ करते हैं; मेढक का नाम गंगदत्त और साँप का नाम प्रियदर्शन! वे दूत भेजते हैं और दूत से बातचीत हुआ करती है—देखो, गंगदत्त इतना बेवकूफ नहीं है कि अब फिर से कुएँ में आए, क्योंकि भूखे लोगों का कोई धर्म नहीं हुआ करता है। 'हितोपदेश' और 'पंचतन्त्र' के इन क़िस्सों से करोड़ों बच्चों के दिमाग़ पर कुछ चीज़ें खुद जाया करती हैं और उसी पर नीतिशास्त्र बना करता है।

मैं जिनका जिक्र आज कर रहा हूँ, वे ऐसे क़िस्से नहीं हैं। उनके साथ नीतिशास्त्र सीधे नहीं जुड़ा हुआ है। ज़्यादा से ज्यादा आप यह कह सकते हो कि किसी भी देश की हँसी और सपने ऐसी महान् किवदंतियों में खुदे रहते हैं। हँसी और सपने, इन दो से कोई और चीज बड़ी दुनिया में हुआ नहीं करती है। जब कोई राष्ट्र हँसा करता है तो वह खुश होता है, उसका दिल चौड़ा होता है। और जब कोई राष्ट्र सपने देखता है, तो वह अपने आदर्शों में रंग भर कर क़िस्से बना लिया करता है।

राम, कृष्ण और शिव ये कोई एक दिन के बनाये हुए नहीं हैं। इनको आपने बनाया।

इन्होंने आपको नहीं बनाया। आमतौर से तो आप यही सुना करते हैं कि राम और कृष्ण और शिव ने हिन्दुस्तान या हिन्दुस्तानियों को बनाया। किसी हद तक, शायद, यह बात सही भी हो, लेकिन ज्यादा सही यह बात है कि करोड़ों हिन्दुस्तानियों ने, युग-युगान्तर के अन्तर में, हज़ारों बरस में, राम, कृष्ण और शिव को बनाया। उनमें अपनी हँसी और सपने के रंग भरे और तब राम और कृष्ण और शिव जैसी चीज़ें सामने हैं।

राम और कृष्ण तो विष्णु के रूप हैं, और शिव महेश के। मोटी तौर से लोग यह समझ लिया करते हैं कि राम और कृष्ण तो रक्षा या अच्छी चीजों की हिफ़ाजत के प्रतीक हैं, और शिव विनाश या बुरी चीज़ों के नाश के प्रतीक हैं। मुझे ऐसे अर्थ में नहीं पड़ना है। कुछ और हैं जिन्हें मज़ा आता है हरेक क़िस्से में अर्थ ढूँढ़ने में। मैं अर्थ नहीं ढूँढूंगा। मुमकिन है सारा भाषण बेमतलब हो, और जितना बेमतलब होगा उतना ही मैं उसे अच्छा समझूँगा, क्योंकि हँसी और सपने तो बेमतलब हुआ करते हैं। फिर भी, असर उनका कितना पड़ता है? छाती चौड़ी होती है। अगर कोई कौम अपनी छाती मौक़े-मौक़े पर ऐसी किंवदंतियों को याद करके चौड़ी कर लेती हो तो फिर उससे बढ़ कर क्या हो सकता है? कोई यह न सोचे कि इस विषय से मैं कोई अर्थ निकालना चाहता हूँ --राजनीतिक अर्थ या दार्शनिक अर्थ या और कोई समाज के गठन का अर्थ। जहाँ तक बन पड़े, पिछले हज़ारों बरसों में जो हमारे देश के पुरखों और हमारी क़ौम ने इन तीनों किंवदंतियों में अपनी बात डाली है, उसको सामने लाने की कोशिश करूंगा।

राम की सबसे बड़ी महिमा उनके उस नाम से मालूम होती है, जिसमें कि उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम कह कर पुकारा जाता है। जो मन में आया सो नहीं कर सकते। राम की ताक़त बँधी हुई है, उसका दायरा खिंचा हुआ है। राम की ताक़त पर कुछ नीति की या शास्त्र की या धर्म की या व्यवहार की या, अगर आप आज की दुनिया का एक शब्द ढूंढ़ें तो, विधान की मर्यादा है। जिस तरह से किसी भी क़ानून की जगह, जैसे विधान सभा या लोकसभा पर विधान रोक लगा दिया करता है, उसी तरह से राम के कामों पर रोक लगी हुई है। वह रोक क्यों लगी हुई है और किस तरह की है, इस सवाल में अभी आप मत पड़िए। लेकिन इतना कह देना काफ़ी होगा कि पुराने दक़ियानूसी लोग भी, जो राम और कृष्ण को विष्णु का अवतार मानते हैं, राम को सिर्फ 8 कलाओं का अवतार मानते हैं और कृष्ण को 16 कलाओं का अवतार। कृष्ण सम्पूर्ण और राम अपूर्ण! अपूर्ण शब्द सही नहीं होगा, लेकिन अपना मतलब बताने के लिए मैं इस शब्द का इस्तेमाल किये लेता हूँ। ऐसे मामलों में, कोई अपूर्ण और सम्पूर्ण नहीं हुआ करता, लेकिन ज़ाहिर है, जब एक में 8 कलाएँ होंगी और दूसरे में 16 कलाएँ होंगी, तो उससे कुछ नतीजे तो निकल ही आया करेंगे।

'भागवत' में एक बड़ा दिलचस्प क़िस्सा है। सीता खोयी थी तब राम को दुःख हुआ था। दुःख ज़रा ज़्यादा हुआ। किसी हद तक मैं समझ भी सकता हूँ, गो कि लक्ष्मण भी वहाँ पर था और देख रहा था। इसलिए राम का पेड़ों से बात करना और रोना वगैरह कुछ ज़्यादा समझ में नहीं आता। अकेले अगर राम रो लेते, तो बात दूसरी थी, लेकिन लक्ष्मण के देखते हुए, पेड़ से बात करना और रोना वग़ैरह, ज़रा ज्यादा आगे बढ़ गयी बात। कौन जाने, शायद वाल्मीकि और तुलसीदास को यही पसन्द रहा हो। लेकिन याद रखना चाहिए कि वाल्मीकि और तुलसीदास में भी फ़र्क़ है। वाल्मीकि की सीता और तुलसी की सीता, दोनों में बिल्कुल दो अलग-अलग दुनिया का फ़र्क़ है। अगर कोई इस पर भी एक किताब लिखना शुरू करे कि सीता हिन्दुस्तान में 3-4 हज़ार

बरस के दौरान में किस तरह बदली, तो वह बहुत ही दिलचस्प किताब होगी। अभी तक ऐसी किताबें लिखी नहीं जा रही हैं लेकिन लिखी जानी चाहिए। खैर, राम रोये, पेड़ों से बोले, दुखी हुए, और उस वक्त चन्द्रमा हँसा था। जाने क्यों चन्द्रमा को ऐसी चीज़ों में दिलचस्पी रहा करती है कि वह हंसा करता है, ऐसा लोग कहते है। वह खूब हँसा। कहा, देखो तो सही, पागल कैसे रो रहा है ?

राम विष्णु के अवतार तो थे ही, चाहे आठ ही कला वाले। विष्णु को बात याद थी। न जाने कितने बरसों के बाद कुछ लोग कहते हैं, लाखों बरसों के बाद, हज़ारों बरसों के बाद, लेकिन मेरी समझ में, शायद, हज़ार दो हज़ार बरस के बाद—जब कृष्ण के रूप में वे आये, तो फिर एक दिन, हज़ारों गोपियों के बीच में कृष्ण ने भी अपनी लीला रचायी। वे 16,000 थीं या 12,000 थीं, इसका मुझे ठीक अन्दाज़ नहीं। एक-एक गोपी के अलग-अलग से, कृष्ण सामने आये और बार-बार चन्द्रमा की तरफ़ देख कर ताना मारा, बोलो, अब हंसो। जो चन्द्रमा राम को देख कर हँसा था जब राम रोये थे, उसी चन्द्रमा को उँगली दिखा कर कृष्ण ने ताना मारा कि अब ज़रा हँसो, देखो तो सही। 16 कला और 8 कला का यह फ़र्क रहा।

राम ने मनुष्य की तरह प्रेम किया। मैं इस समय इस बहस में बिल्कुल नहीं पड़ना चाहता कि सचमुच कृष्ण ने ऐसा प्रेम किया या नहीं किया। यह बिल्कुल फ़िज़ूल बात है। मैं शुरू में ही कह चुका हूँ कि ऐसी कहानियों का असर नहीं ढूँढा जाता है, यह देख कर नहीं कि वे सच्ची हैं या झूठी, लेकिन यह देख कर कि उनमें कितना सच भरा हुआ है, और दिमाग़ पर उनका कितना असर पड़ता है। यह सही है कि कृष्ण ने प्रेम किया, और ऐसा प्रेम किया कि बिल्कुल बेरोये रह गये, और तब चन्द्रमा को ताना मारा। राम रोये तो चन्द्रमा ने विष्णु को ताना मारा, कृष्ण 16000 गोपियों के बीच में बाँसुरी बजाते रहे, तो चन्द्रमा को विष्णु ने ताना मारा। ये क़िस्से मशहूर हैं। इसी से आप और नतीजे निकालिए।

कृष्ण झूठ बोलते हैं; चोरी करते हैं; धोखा देते हैं; और जितने भी अन्याय के, अधर्म के काम हो सकते हैं, वे सब करते हैं। जो कृष्ण के सच्चे भक्त होंगे, मेरी बात का बिल्कुल भी बुरा न मानेंगे। मुमकिन है कि एकाध नकली भक्त गुस्सा कर जाए। एक बार जेल में मेरा साथ पड़ा था मथुरा के एक बहुत बड़े चौबे जी के साथ और मथुरा तो फिर मथुरा ही है। जितना ही हम उनको चिढ़ाना चाहें, वे खुद अपने आप कह दें कि हाँ, वह तो माखन चोर था कोई क्या करे ऐसे आदमी को ? हम कहें कृष्ण चोर था; वह कहें, हाँ वह तो माखन चोर था। हम कहें कृष्ण धोखेबाज था; तो वे ज़रूर कृष्ण का कोई न कोई क़िस्सा धोखे का सुना दें। जो कृष्ण के सच्चे उपासक हैं, उनको तो मजा मिलता है कृष्ण की झूठ, दग़ा और धोखेबाजी और लम्पटपन को याद करके। सो क्यों ? 16 कला हैं। मर्यादा नहीं, सीमा नहीं, विधान नहीं है, यह ऐसी लोकसभा है जिसके ऊपर विधान की कोई रुकावट नहीं है, मन में आये सो करे।

धर्म की विजय के लिए अधर्म से अधर्म करने को तैयार रहने का प्रतीक कृष्ण है। मैं यही तो क़िस्से नहीं बताऊँगा, पर आप खुद याद कर सकते हो कि कब सूरज को छुपा दिया जब कि वह सचमुच नहीं छुपा था; कब एक जुमले के आधे हिस्से को ज़रा ज़ोर से बोल कर और दूसरे हिस्से को धीमे बोल कर कृष्ण झूठ बोल गये। इस तरह की चालबाज़ियाँ तो कृष्ण हमेशा ही किया करते थे। कृष्ण 16 कलाओं के अवतार, किसी चीज़ की मर्यादा नहीं। राम मर्यादित अवतार,

ताकत के ऊपर सीमा जिसे वे उलाँघ नहीं सकते थे। कृष्ण बिना मर्यादा का अवतार। लेकिन इसके यह मानी नहीं कि जो कोई झूठ बोले और धोखा करे वही कृष्ण हो सकता है। अपने किसी लाभ के लिए नहीं, अपने किसी राग के लिए नहीं। राग शब्द बहुत अच्छा शब्द है हिन्दुस्तान का। मन के अन्दर राग हुआ करते हैं, राग चाहे लोभ के हों, चाहे क्रोध के हों, चाहे ईर्ष्या के हों, राग होते हैं। यह सब, वीतराग भय, क्रोध जिसकी चर्चा हमारे कई ग्रन्थों मे मिलती है; भय, क्रोध, राग से परे। धोखा, झूठ, बदमाशी और लम्पटपन कृष्ण का, एक ऐसे आदमी का था, जिसे अपना कोई फ़ायदा नहीं ढूंढ़ना था, जिसे कोई लोभ नहीं था, जिसे ईर्ष्या नहीं थी, जिसे किसी के साथ जलन नहीं थी, जिसे अपना कोई बढ़ावा नही करना था। यह चीज़ मुमकिन है या नही, इस सवाल को आप छोड़ दीजिए। असल चीज़ है, दिमाग पर असर कि यह सम्भव है या नहीं। हम लोग इसे सम्भव मानते भी हैं, और मैं खुद समझता हूँ कि अगर पूरा नहीं तो अधूरा, किसी, न किसी रूप में यह चीज़ सम्भव है।

कभी-कभी आज के जमाने में भी, राम और कृष्ण की तस्वीरें हिन्दुस्तान के बड़े लोगों को समझते हुए, आपकी आँखों के सामने नाचा करती होंगी। न नाचती हों तो अब आगे से नाचेंगी। एक बार मेरे दोस्त ने कहा था, गाँधी जी के मरने पर, कि साबरमती या काठियावाड़ की नदियों का बालक जमुना के किनारे जलाया गया, और जमुना का बालक काठियावाड़ की नदियों के किनारे जलाया गया था। फासला दोनों मे हजारों बरस का है। काठियावाड़ की नदियों का बालक और जमुना नदी का बालक, दोनों में, शायद, इतना सम्बन्ध न दीख पाता होगा, मुझे भी नहीं दीखता था कुछ अरसे पहले तक, क्योंकि गाँधी जी ने खुद राम को याद किया और हमेशा याद किया। जब कभी गाँधी जी ने किसी नाम को लिया, तो राम का लिया। कृष्ण का नाम भी ले सकते थे वे। लेकिन नहीं। उन्हें एक मर्यादित तसवीर हिन्दुस्तान के सामने रखनी थी, एक ऐसी ताकत जो अपने ऊपर नीति, धर्म या व्यवहार की रुकावटों को रखे—मर्यादा पुरुषोत्तम का प्रतीक।

मैंने भी सोचा था बहुत अरसे तक, कि शायद गाँधी जी के तरीके कुछ मर्यादा के अन्दर रह कर ही हुए। ज्यादातर यह बात सही भी है लेकिन पूरी सही भी नहीं है। और यह असर दिमाग पर तब पड़ता है, जब आप गाँधी जी के लेखों और भाषणों को एक साथ पढ़ें। अंग्रेजों और जर्मनियों की लड़ाई के दौरान में हर हफ्ते 'हरिजन' में उनके लेख या भाषण छपा करते थे। हर हफ्ते उनकी जो बोली निकलती थी, उसमें इतनी ताकत और इतना माधुर्य होता कि मुझ जैसे आदमी को भी समझ में नही आता था कि बोली शायद, बदल रही है हर हफ्ते। बोली तो खैर हमेशा बदला करती है, लेकिन उसकी बुनियादें भी बदल गयीं, ऐसा लगता था कृष्ण अपनी बोली की बुनियाद बदल दिया करते थे; राम नही बदलते थे। कुछ महीने पहले का किस्सा है कि एकाएक मैंने, लड़ाई के दिनों में गाँधी जी ने जो कुछ लिखा था हर हफ्ते लगातार, उसमें से 6 महीनों की बातें एक साथ जब मैंने पढ़ी, तब पता चला कि किस तरह बोली बदल जाती थी। जिस चीज को आज अहिंसा कहा, उसी को 2–3 महीने बाद हिंसा कह डाला, और उसका उलटा जिसे हिंसा कहा, उसे अहिंसा कह डाला। वक्ती तौर पर अपने संगठन के नीति-नियमों के मुताबिक जाने के लिए और अपने आदमियों को मदद पहुँचाने के लिए बुनियादी सिद्धान्तों के बारे में भी बदलाव करने के लिए वे तैयार थे। यह किया उन्होंने लेकिन ज्यादा नहीं किया।

मैं यह नही कहना चाहूँगा कि गाँधी जी ने कृष्ण का काम बहुत ज्यादा किया, लेकिन काफी किया। इससे कहीं यह न समझना कि गाँधी जी मेरी नजरों में गिर गये, कृष्ण मेरी नजरो

में कहाँ गिर गये ? ये तो ऐसी चीजें हैं जिनका सिर्फ सामना करना पड़ता है। गिरने-गिराने का तो कोई सवाल है नहीं। लेकिन यह कि आदमी को अपनी कसौटियाँ हमेशा पैनी और साफ रखनी चाहिए कि जिससे पता चल सके कि आया जिस किसी चीज को उसने आदर्श बनाया है या जिन सिद्धान्तों को अपनाया है, उन्हें वह सचमुच लागू किया करता है या नहीं। जैसे, साधनों की शुचिता या जिस तरह के मकसद हों उसी तरह के तरीके हों, इस सिद्धान्त को गाँधी जी ने न सिर्फ अपनाया बल्कि बार-बार दुहराया। शायद इसी को उन्होंने अपनी जिन्दगी का सबसे बड़ा मकसद समझा कि अगर मकसद अच्छे बनाने हैं तो तरीके भी अच्छे बनाने पड़ेंगे। लेकिन आपको याद होगा कि किस तरह बिहार के भूकम्प को अछूत-प्रथा का नतीजा बता कर उन्होंने एक अच्छा मकसद हासिल करना चाहा था कि हिन्दुस्तान से अछूत-प्रथा खतम हो। बहुत बढ़िया मकसद था, इसमें कोई शक नहीं। उन दिनों जब रवीन्द्रनाथ ठाकुर और महात्मा गाँधी में बहस हुई थी, तो मुझे एकाएक लगा कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर क्यों यह तीन-पाँच कर रहे है। आखिर गाँधी जी कितना बड़ा मकसद हासिल कर रहे हैं। जाति-प्रथा मिटाना, हरिजन और अछूत-प्रथा मिटाना, इससे बड़ा और क्या मकसद हो सकता है। लेकिन उस मकसद को हासिल करने के लिए कितनी बड़ी झूठ बोल गये कि बिहार का भूकम्प हुआ इसलिए कि हिन्दुस्तानी लोग आपस में अछूत-प्रथा चलाते हैं। भला भूकम्प और तारे और आसमान, पानी और सूरज वगैरह को भी इससे क्या पड़ा है कि हिन्दुस्तान में अछूत-प्रथा चलती है या नहीं।

मैं, इस समय, बुनियादी तौर से राम और कृष्ण के बीच के इस फर्क को सामने रखना चाहता हूँ कि एक तो मर्यादा पुरुषोत्तम है, एक की ताकतों के ऊपर रोक है, और दूसरा बिना रोक का, स्वयंभू है। यह सही है कि वह राग से परे है, राग से परे रह कर सब कुछ कर सकता है और उसके लिए नियम और उपनियम नहीं।

शिव एक निराली अदा वाला है। दुनिया भर में ऐसी कोई किंवदन्ती नहीं जिसकी न लम्बाई है, न चौड़ाई है और न मोटाई। एक फ्रांसीसी लेखक ने शिव के बारे में एक बार कहा था कि वह तो 'नान् डाइमेंशनल मिथ' है, (अंग्रेजी शब्द हैं, फ्रांसीसी नहीं यानी ऐसी किंवदन्ती जिनकी कोई सीमा नहीं है, जिसकी कोई हदें नहीं है—न लम्बाई, न चौड़ाई, न मोटाई।) किंवदन्तियाँ दुनिया में और जगह भी हैं, खास तौर से पुराने मुल्कों में, जैसे ग्रीस आदि में बहुत हैं। कहाँ नहीं हैं ? बिना किंवदन्तियों के कोई देश रहा ही नहीं, और जितने पुराने देश हैं उनमें किंवदन्तियाँ ज्यादा हैं। मैंने शुरू में कहा था कि एक तरफ 'हितोपदेश' और 'पंचतंत्र' की गंगदत्त और प्रिय-दर्शन जैसी बच्चों की कहानियाँ हैं, तो दूसरी तरफ, हजारों बरस के काम के नतीजे के स्वरूप कुछ लोगों में कौम की हँसी और सपने भरे हुए हैं, ऐसी किंवदन्तियाँ हैं।

शिव ही एक ऐसी किंवदन्ती है जिसका न आगा है न पीछा। यहाँ तक कि वह किस्सा मशहूर है कि जब ब्रह्मा और विष्णु आपस में लड़ गये—ये देवी-देवता खूब लड़ा करते हैं, कभी-कभी आपस में—तो शिव ने उनसे कहा लड़ो मत। जाओ, तुममें से एक मेरे सिर का पता लगाए और दूसरा मेरे पैर का पता लगाए और फिर लौट कर मुझसे कहो ! जो पहले पता लगा लेगा, उसकी जीत हो जाएगी। दोनों पता लगाने निकले। शायद अब तक पता हो ! जो ऐसे किस्से कहानियाँ गढ़ा करते हैं, उनके लिए वक्त का कोई मतलब नहीं रहता। उसके लिए एक मिनट के मानी 1 करोड़ बरस। कोई हिसाब और गणित वगैरह का सवाल नही उठता उनके सामने खैर, किस्सा यह है कि बहुत अरसे के बाद, न जाने कितने लाखों बरस के बाद ब्रह्मा और विष्णु दोनों

लौट कर आये। शिव से बोले कि भाई, पता तो नहीं लगा। तब उन्होंने कहा कि फिर क्यों लड़ते हो ? फिजूल है।

यह असीमित किंवदन्ती है। इसके बारे में, बार-बार मेरे दिमाग में एक ख्याल उठ आता है कि दुनिया में जितने भी लोग हैं चाहे ऐतिहासिक और चाहे किंवदन्ती के, उन सबके कर्मों को समझने के लिए कर्म और फल, कारण और फल देखना पड़ता है। उनके जीवन में ऐसी घटनाएँ हैं कि जिन्हें एकाएक नहीं समझा जा सकता। वे अजीब-सी मालूम पड़ती हैं। उन घटनाओं को समझने के लिए पहले का कारण ढूंढ़ना पड़ता है और बाद का फल ढूंढ़ना पड़ता है। तब जा करके वे सही मालूम पड़ती हैं। आप भी अपनी आपस की घटनाओं को सोच लेना। आपके आपस में रिश्ते होंगे। न जाने कितनी बातें होंगी। बड़े लोगों के रिश्ते होंगे—बड़े लोगों से मतलब यह नहीं कि आप छोटे लोग है, बड़े लोगों के मानी सिर्फ यह है कि जिनका नाम हो जाया करता है, और कोई मतलब नही है, चाहे वे बदमाश ही लोग क्यों न हों और आमतौर से, बदमाश लोगों का ही नाम हुआ करता है। खैर, बड़े लोग हों, छोटे लोग हों, कोई हों, उनके आपसी रिश्ते होते हैं। उन आपसी रिश्तों के प्रकाश की एक शृंखला होती है—एक कड़ी के बाद एक कड़ी, एक कड़ी के बाद कड़ी। अगर कोई चाहे कि उनमें से किसी एक ही कड़ी को पकड़ कर पता लगाए कि आदमी अच्छा है या बुरा, तो गलती कर जाएगा, क्योंकि उस कड़ी के पहले वाली कड़ी कारण के रूप में है और उसके बाद वाली कड़ी फल के रूप में है। क्यों किया ? कई बार ऐसे काम मालूम होते हैं जो बजाते खुद बुरे हैं, गन्दे हैं, या झूठे हैं। उदाहरण, मैंने कृष्ण के लिए कहा। वह सबके लिए है। लेकिन वह काम क्यों हुआ, उसका कारण क्या था और उसको करने के बाद परिणाम क्या निकला, वह सब देखना पड़ता है। कारण और परिणाम देखना, हर आदमी और हर किस्से और सीमित किंवदन्ती को समझने के लिए जरूरी होता है।

शिव ही एक ऐसी किंवदन्ती है जिसका हरेक काम, बजाते खुद, अपने औचित्य को अपने-आप में रखता है। कोई भी काम आप शिव का ढूंढ़ लो, वह उचित काम होगा। उसके लिए पहले की कोई कड़ी नहीं ढूंढ़नी पड़ेगी और न बाद की कोई कड़ी। क्यों शिव ने ऐसा किया, उसका क्या नतीजा निकला, यह सब देखने की कोई जरूरत नही होगी। औरों के लिये इसकी जरूरत पड़ जायेगी। राम के लिये जरूरत पड़ेगी, कृष्ण के लिये जरूरत पड़ेगी, दुनिया में हरेक आदमी के लिये इसकी जरूरत पड़ेगी, और जो दुनिया भर के किस्से हैं उनके लिये जरूरत पड़ेगी। क्यों उसने ऐसा किया ? पहले की बात याद करनी होगी कि क्या बातें हुईं, क्या कारण था, किस लिये उसका यह काम हुआ और फिर उसके क्या नतीजे निकले। हमेशा दूसरे लोगों के बारे में कर्म और फल की एक पूरी कड़ी बंधती है। लेकिन मुझे तो, ढूंढ़ने पर भी, शिव का ऐसा कोई काम नहीं मालूम पड़ा कि मैं कह सकूं कि उन्होंने क्यों ऐसा किया; ढूंढो, उसका क्या कारण था; ढूंढ़ो, बाद में उसका क्या परिणाम निकला। यह चीज बहुत बड़ी है।

आज की दुनिया में प्रायः सभी लोग अपने मौजूदा तरीके को, गन्दे कामों को उचित बताते हैं, यह कह कर कि आगे चल कर उसके परिणाम अच्छे निकलेंगे। वे एक कड़ी बाँधते हैं। आज चाहे वे गन्दे काम हों, लेकिन हमेशा उसकी कड़ी जोड़ेंगे कि भविष्य में कुछ ऐसे नतीजे उसके निकलेंगे कि वह काम अच्छे जाएँगे। कारण और फल की ऐसी शृंखला खुद अपने दिमाग में बाँधते हैं, और दुनिया के दिमाग में बाँधते हैं कि किसी भी काम के लिये कोई कसौटी नहीं बना सकती मानवता। आखिर कसौटियाँ होनी चाहिये। काम अच्छा है या बुरा, इसका कैसे पता लगाएँगे।

कोई कसौटी होनी ही चाहिये। अगर एक के बाद एक कड़ी बाँध देते हो तो फिर कोई कसौटी नहीं रह जाती। फिर तो मनमानी होने लग जाती है, क्योंकि जितनी लम्बी जंजीर हो जायेगी, उतना ही ज्यादा मौका मिलेगा लोगों को अपनी मनमानी बात उसके अन्दर रखने का। ऐसा दर्शन बनाओ, ऐसा सिद्धान्त बनाओ कि जिसमें मौजूदा घटनाओं को जोड़ दिया जाये किसी बड़ी, दूर भविष्य की घटना से, तो फिर, मौजूदा घटनाओं में कितना ही गन्दापन रहे, लेकिन उस दूर के भविष्य की घटना, जो होने वाली है, जिसके बारे में कोई कसौटी बन नहीं सकती कि वह होगी या नहीं होगी इसके बारे में बहुत हद तक आदमी को मान कर चलना पड़ता है कि वह शायद होगी, उसको लेकर मौजूदा घटनाओं का औचित्य या अनौचित्य ढूँढ़ा जाता है। और यह हमेशा हुआ है। मैं यहाँ मौजूदा दुनिया के किस्से तो बताऊँगा नहीं, लेकिन इतना आप से कह दूँ कि प्रायः, यह जरा अति बोली है, लेकिन प्रायः हरेक राजनीति की, समाज की, अर्थ शास्त्र की घटना ऐसी ही है कि जिसका औचित्य या तो कोई पुरानी कड़ी या कोई आगे आने वाली किसी जंजीर के साथ बाँधा जाता है।

यहाँ मैं सिर्फ कृष्ण का ही किस्सा बता देता हूँ कि अश्वत्थामा के बारे में धीमे बोलना या जोर से बोलने के औचित्य और अनौचित्य को, कौरव- पांडव की लड़ाई से बहुत पुराना किस्सा, बहुत आगे आने वाली घटना के साथ जोड़ दिया जाता है। यह खुद बुरा काम है, मान कर चलना पड़ता है। लेकिन उस बुरे काम का औचित्य साबित हो जाता है पुराने कारण से और भविष्य में आने वाले परिणाम से। आप शिव का ऐसा कोई किस्सा नहीं पाओगे। शिव का हरेक किस्सा अपने-आप उचित है। उसी के अन्दर सब कारण और सब फल भरे हुये हैं, जिससे मालूम पड़ता है कि वह सही है, ठीक है, उसमें कोई गलती हो नहीं सकती।

मुझे शिव के किस्से यहाँ नहीं सुनाने हैं। मशहूर तो बहुत हैं। शायद, पार्वती को अपने कंधे पर लादे फिरने वाला किस्सा इतनी तफसील में कि पार्वती के शरीर का कौन-सा अंग कहाँ गिरा और कौन-सा मन्दिर कहाँ बना, सबको मालूम है। गौतम बुद्ध और अशोक के बारे में या अकबर के बारे में ऐसे किस्से नहीं मशहूर हैं। शिव के वे सब किस्से बहुत मशहूर हैं और अच्छी तरह से लोगों को मालूम है। अगर नहीं मालूम हों तो जरा ये किस्से सुन लिया करो, अभी आपकी दादी जिन्दा हो तो उससे। दादी जिन्दा न हो तो मानी जिन्दा होगी, कोई न कोई होगी, और अगर वह भी न हो, तो अपनी बीबी से सुन लिया करो।

शिव का कोई भी किस्सा अपने आप उचित है। ऐसा लगता है कि जैसे किसी आदमी की जिन्दगी में चाहे हजारों घटनाएँ हुई हों और उनमें से एक-एक घटना खुद एक जिन्दगी है। उसके लिए पहले की दूसरी घटना और आगे की दूसरी घटना की कोई जरूरत नहीं रहती। शिव बिना सीमा की किंवदन्ती है और बहुत से मामलों में छाती को बहुत चौड़ा करने वाली, और उसके साथ-साथ आदमी को एक उँगली की तरह रास्ता दिखाने वाली कि जहाँ तक बन पड़े, तुम अपने हरेक काम को बिना पहले के कारण और बिना आगे के परिणाम को देखे हुए भी उचित बनाओ।

हो सकता है, राम और कृष्ण और शिव, इन तीनों को लेकर कइयों के दिमाग में अलगाव की बातें भी उठती हों। मैं आपके सामने अभी एक विचार रख रहा हूँ। जरूरी नहीं है कि इसको आप मान ही लें। हरेक चीज को मान लेने से ही दिमाग नहीं बढ़ा करता। उसको सुनना, उसको समझने की कोशिश करना और फिर उसको छोड़ देने से भी कई दफे, दिमाग आगे बढ़ा करता है। मैं खुद भी इस बात को पूरी तरह से अपनाता हूँ सो नहीं। एकाएक एक बार मैंने

जब 1951-52 के आम चुनावों के नतीजे पर सोचना शुरू किया तो मेरे दिमाग में एक अजीब-सी बात आयी। आपको याद होगा कि 1951-52 में हिन्दुस्तान में आम चुनावों में एक इलाका ऐसा था कि जहाँ कम्युनिस्ट जीते थे; दूसरा इलाका ऐसा था जहाँ सोशलिस्ट जीते थे; तीसरा इलाका ऐसा था जहाँ धर्म के नाम पर कोई न कोई संस्था जीती थी। यों, सब जगह कांग्रेस जीती थी और सरकार उसी की रही। मैं इस वक्त सबसे बड़ी पार्टी की बात नहीं कर रहा हूँ—नम्बर 2 पार्टी की बात कह रहा हूँ। सारे देश में नम्बर 1 पार्टी तो कांग्रेस पार्टी रही लेकिन हिन्दुस्तान के इलाके कुछ ऐसे साफ-से थे जहाँ पर ये तीनों पार्टियाँ जीतीं, अलग-अलग, यानी कहीं पर कम्युनिस्ट नम्बर 2 पर रहे, कहीं पर सोशलिस्ट नम्बर 2 पर रहे और कहीं पर ये जनसंघ, रामराज्य परिषद् वगैरह मिल-मिलाकर इन सबको तो एक ही समझना चाहिये – नम्बर 2 रहे। मैं यह नहीं कहता कि जो कुछ मैं कह रहा हूँ वह सही है मुमकिन है, इसके ऊपर अगर हिन्दुस्तान के कालेज और विश्वविद्यालय जरा दिमाग कुछ चौड़ा करके देखते—कुछ तफरीही दिमाग से क्योंकि तफरीह में भी कई चीजें की जाती हैं, चाहे वे सही निकलें, न निकलें—तो हिन्दुस्तान के नक्शे के 3 हिस्से बनाते। एक नक्शा वह, जहाँ राम सबसे ज्यादा चला हुआ है, दूसरा वह, जहाँ कृष्ण सबसे ज्यादा चला हुआ है, तीसरा वह, जहाँ शिव सबसे ज्यादा हुआ है। मैं जब राम, कृष्ण और शिव कहता हूँ तो जाहिर है, उनकी बीवीयों को शामिल कर लेता हूँ। उनके नौकरों को भी शामिल कर लेना चाहिये क्योंकि ऐसे भी इलाके हैं जहाँ हनुमान चलता है जिसके साफ मानी हैं कि वहाँ राम चलता है; ऐसे इलाके हैं जहाँ काली और दुर्गा चलती हैं, इसके साफ मानी हैं कि वहाँ शिव चलता है। हिन्दुस्तान के इलाके हैं जहाँ पर इन तीनों ने अपना-अपना दिमागी साम्राज्य बना रखा है। दिमागी साम्राज्य भी रहा करता है, विचारों का, किंवदन्तियों का।

मोटी तौर पर शिव का इलाका वह इलाका था जहाँ कम्युनिस्ट नम्बर 2 हुये थे, मोटी तौर पर। उसी तरह, कृष्ण का इलाका वह था जहाँ संघ और रामराज्य परिषद् वाले नम्बर दो हुये थे। मोटी तौर पर राम का इलाका वह था जहाँ सोशलिस्ट नम्बर 2 हुये थे। मैं मानता हूँ कि मैं खुद चाहूँ तो इस विचार को एक मिनट में तोड़ सकता हूँ, क्योंकि ऐसे बहुत से इलाके मिलेंगे जो जरा दुविधा के रहते हैं। किसी बड़े ख्याल को तोड़ने के लिये छोटे-छोटे अपवाद निकाल देना कौन बात है। खैर, मोटी तौर पर मुझे ऐसा लगता है कि हिन्दुस्तान की किंवदन्तियों के इन तीन साम्राज्यों के मुताबिक ही हिन्दुस्तान की जनता ने अपनी विरोधी शक्तियों को चुनने की कोशिश की। आप कह सकते हैं कि अभी तो तुमने शिव की बड़ी तारीफ की थी। तुम्हारा यह शिव कैसा निकला। जहाँ पर शिव की किंवदन्ती का साम्राज्य है, वहाँ तो कम्युनिस्ट जीत गये। तो, फिर, मुझे यह भी कहना पड़ता है कि जरूरी नहीं है कि इन किंवदन्तियों के अच्छे ही असर पड़ते हैं, सब तरह के असर पड़ सकते है।

शिव अगर नीलकण्ठ हैं और दुनिया के लिये अकेले जहर को अपने गले में बाँध सकते हैं, तो उसके साथ-साथ धतूरा खाने और पीने वाले भी हैं। शिव की दोनों तसवीरें साथ-साथ जुड़ी हुई है। मान लो, थोड़ी देर के लिये, वे धतूरा न भी खाते रहे हों। फिर से मैं बता दूँ कि ये सवाल सच्चाई और झुठाई के नहीं है। यह तो सिर्फ किसी आदमी के दिमाग का एक नक्शा है। हिन्दुस्तान में करोड़ों लोग समझते है कि शिव धतूरा पीते है, और सब तरह की बातें जुड़ी हुई है। लूले-लँगड़े, भूखे के मानी क्या हुये ? गरीबों का आदमी।

शिव का वह किस्सा भी आपको याद होगा कि शिव ने सती को मना किया था कि देखो, तुम अपने बाप के यहाँ मत जाओ, क्योंकि उसने तुमको बुलाया नहीं। बहुत बढ़िया किस्सा

है यह । शिव ने कहा था कि जहाँ पर विरोध हो गया हो वहाँ बिना बुलाये मत जाओ, उसमें कल्याण नहीं हुआ करता है । पर फिर भी सती गयी । यह सही है कि उसके बाद शिव ने अपना, वक्ती तौर पर—जैसा मैंने कहा, वह काम खुद अपने-आप में उचित है—बहुत जबरदस्त गुस्सा दिखाया था । और उसकी पलटन कैसी थी ! धगद्धगद्धगज्ज्वलल्लाट पट्टपावके किशोर चन्द्रशेखरे··· शिव की जो तसवीरें अक्सर आँख के सामने आती है वह किस तरह की है जटा में चन्द्रमा है, लेकिन लपटें ज्वाला की निकल रही है धगद्धगद हो रहा है । सब तरह की, एक बिना सीमा की किवदन्ती सामने खड़ी हो जाती है—शक्ति की, फैलाव की, सब तरह के लोगों को साथ समेटने की ।

इसी तरह जाहिर है कृष्ण और राम की किंवदन्तियों के भी दूसरे स्वरूप हैं । राम चाहे जितने ही मर्यादा पुरुषोत्तम रहे हों, लेकिन, अगर उनके क़िस्से का मामला बैलगाड़ी की पुरानी लीक तक ही फँस कर रह जाय तो फिर उनके उपासक कभी आगे बढ़ नहीं सकते । वे लकीर से बँधे रह जाएँगे । यह सही है कि राम के उपासक शायद, बहुत बुरा काम नहीं करेंगे क्योंकि बुराई करने में भी वे मर्यादा से बँधे है अगर अच्छाई करने में मर्यादा से बँधे हुए हैं । शिव या कृष्ण में इस तरह बन्धन का कोई मामला नहीं है । कृष्ण में तो किसी भी नीति के बन्धन का मामला नहीं है । और शिव में हर एक घटना खुद इतने महत्व की हो जाती है कि अपनी सम्पूर्ण शक्ति उसमें लगा कर, उस वक्त भी पूरी हद तक पहुँच सकते हैं या उससे बाहर, और उसके बाद, जैसा कि दक्षिण वालों के मुकाबले में । तांडव की भी कोई बुनियाद होती है : एक गाढ निद्रा—एकाएक आँखें खुलीं, लीला देखी, लीला के साथ-साथ आँखें इधर-उधर मटकायीं, और देख कर फिर आँखें बन्द हो गयीं । फिर, मुमकिन है, एक दूसरी सतह पर आँखें बन्द हुईं और एक लीला हुई और चली गयी, आँखें खुलीं और बन्द हुईं ।

इससे एक तामस भी जुड़ा हुआ है । शान्ति सतोगुण का प्रतीक है । लेकिन अगर शान्ति कहीं बिगड़ना शुरू हो जाये तो फिर वह तामस का रूप ले लिया करता है । चुप बैठो, कुछ करो मत, धगद्धगद होता रहे, धतूरा या धतूरे प्रतीक की कोई न कोई चीज़ें चलती रहे । और हमारे देश में अकर्मण्यता का तो बहुत जबरदस्त दार्शनिक आधार है, कर्म नहीं करने का । यह सही है कि अलग-अलग मौकों पर हिन्दुस्तान के इतिहास में अलग-अलग दार्शनिकों ने कर्म के सिद्धान्त को, अपने हिसाब से, समझाने की कोशिश की है । लेकिन बुनियादी तौर पर हिन्दुस्तान का असली धर्म-सिद्धान्त यही है कि जहां तक बन पड़े अपने आप को कर्म की फाँस से रिहा करो । यह सही है कि जो पुराने संचित कर्म हैं, उनसे तो छूट सकते नहीं; उनको तो भुगतना पड़ेगा. वे तो और नये कर्मों में आएँगे ही, लेकिन कोशिश यह करो कि नये कर्म न आयें । हिन्दुस्तान की सभ्यता का यह मूलभूत आधार कभी नहीं भूलना चाहिये, कि नये काम मत करो, पुराने कामों को भुगतना ही पड़ेगा और जब कामों की शृंखला टूट जायेगी तभी मोक्ष मिलेगा । और शिव जैसी किंवदन्ती, और इस तरह के विचार के मिल जाने के बाद, कई बार तामस भी आ जाया करता है—उसके साथ-साथ एकाएक कोई विस्फोट हो जाया करता है यानी जिसके आगे और पीछे कुछ है नहीं, नतीजा निकले या न निकले, क्योंकि जहाँ हर एक कर्म अपने औचित्य को अपने-आप में रखता है और न आगे है न पीछे हैं, वहाँ, अगर किंवदन्ती कहीं बिगड़ गयी तो यह सम्भावना हो जाया करती है कि विस्फोट हो जाए । उसका आगे है न पीछे है और न ही कोई तात्पर्य है । फिर, जब किंवदन्तियाँ बिगड़ती हैं, तो वे चाहे राम का इलाक़ा हो, चाहे कृष्ण का इलाक़ा हो, चाहे शिव का इलाक़ा हो, बिगड़ती ही चली जाती है ।

मैं समझता हूँ, किसी हद तक, मैंने इन तीन किंवदन्तियों के स्वरूप आपके सामने रखे—बड़े स्वरूप। इनके क़िस्से किसी भी काम के लिए मनोहर हैं और छाती को चौड़ा करने वाले हैं। जरूरी नहीं है कि कोई उन किस्सों को माने। झूठे हैं तो इससे मुझे क्या मतलब ? क़िस्से तो हैं न ! हम उपन्यास पढ़ते हैं कि नहीं पढ़ते। 'हितोपदेश' और 'पंचतन्त्र' के गंगदत्त और प्रियदर्शन को याद रखते हैं। ये किस्से ऐसे हैं जिन्हें हर एक कौम, अपनी हँसी और अपने सपने को, दिमाग़ की सतह पर, जो बहुत बुनियादी और गहरी सतह है, उस पर खोद कर रखा करती है। इन क़िस्सों के बारे में सावधान हो कर रहना चाहिये।

वह नीलकण्ठ शिव, जिसके हर एक काम का औचित्य उसके अन्दर बना हुआ है। वह मर्यादा पुरुषोत्तम राम और वह योगीश्वर कृष्ण जो लीला करके चन्द्रमा को ताना मारा करता है। ये सब किसी भी आदमी के दिल को बड़ा करने वाले क़िस्से हैं। पुराने देश ने इस बात का भी कुछ थोड़ा-बहुत इन्तज़ाम किया कि ये किंवदन्तियाँ आपस में न टकराएँ। अगर वे कहीं टकराती हैं, शायद मुमकिन है भी, तो बोलचाल में। आपस में ज्यादा से ज्यादा मारपीट इस हद तक हुई होगी कि लोगों ने मूर्तियाँ तोड़ी हों। मूर्तियाँ तो आज भी टूटती हैं और पहले के जमाने में टूटी होंगी। इसमें आदमी को बहुत ज्यादा सोच-विचार नहीं करना चाहिए। यह सब तो लीला की तरह चलता रहता है, आँखें खोलो और बन्द करो। कहीं पर मूर्तियाँ टूट गयीं या बन गयीं, यह सब तो चला करता है। ये इन्तज़ाम किये गये हैं कि तीनों आपस में टकराएँ नहीं।

और सिर्फ़ जमुना और सरयू में ही एका करने की कोशिश नहीं की गयी। जब तुलसीदास गये जमुना के किनारे, तो उन्होंने अपना सिर नँवाने से इन्कार किया, यह जानते हुए कि सब एक ही माया है। लेकिन उन्होंने कहा कि भई हाथ में धनुष-बाण लो, अपनी मुरली अलग रखो तब मैं अपना सिर नँवाऊँगा। तो फिर मुरली अलग हुई, धनुष-बाण हाथ में आया, जमुना और सरयू एक हो गयीं। और, हमारे यहाँ के जो गाने-बजाने वाले लोग हैं उनसे बढ़कर इन मामलों में कोई और नहीं हो सकते, राम को हमेशा जमुना के तट पर होली खिलवा कर छोड़ दिया करते हैं। यमुना के तट पर राम होली खेलें ! तो अब कहो कि यह कौन-सी बात है। सरयू के तट पर कृष्ण जा कर कौन-सी अपनी रासलीला रचाएँ। ये सब चीजें हमारे लेखक कर दिया करते हैं, और लेखक कोई मामूली आदमी थोड़े ही होते हैं; पर हर लेखक नहीं। बड़ा लेखक बहुत बड़ा आदमी होता है। वह राम को भेज देता है जमुना-किनारे और कृष्ण को भेज देता है सरयू-किनारे। फिर यह क्यों न सम्भव हो कि हिन्दुस्तानी लोग भी ऐसी किंवदन्ती को अपनी आँखों के सामने लाएँ कि जिसमें शिव अपनी जटा में सिर्फ़ चन्द्रमा ही नहीं मुरली वाले कृष्ण को लिये हों, और मर्यादा पुरुषोत्तम राम के साथ तांडव कर रहे हों। लाने को ऐसी तसवीरें लोग अपनी आँखों में ला ही सकते हैं। शायद आ जाए हिन्दुस्तान में।

मेरा बिलकुल यह मतलब नहीं था कि कोई उपदेश करूँ। उपदेश मैं कर भी क्या सकता हूँ। उपदेश करना बेवकूफी होगी। इसका सिर्फ एक मक़सद था कि इन तीन किंवदन्तियों के कुछ पहलुओं को आपके सामने लाना कि जिसमें कुछ किस्से-कहानियों को याद करके आपकी तबियत कुछ खुश हो, आप कुछ हँसें और कुछ सपने देखें।

6 महीने तक मरी हुई पार्वती को अपने कंधों पर लाद कर ले चलना यह भी एक अनोखा प्रेम है। लड़ाई के मैदान में दुनिया के शायद सबसे बड़े दर्शन को गीत के रूप में कह देना, यह भी एक अनोखा दर्शन है। यों हिन्दुस्तान में एक अजीब खूबी पायी गयी है कि अपने दर्शन को उसने गीत के रूप में कहा। और कौमों ने भी इसकी कोशिश की, लेकिन, जिस किसी सबब से हो, उतनी सफलता नही मिली। उसी तरह से राम ने भी अपनी ताकत को मर्यादा के अन्दर रख कर अपना काम किया। जब रावण मर रहा था तो राम ने लक्ष्मण से राजनीति सीखने के लिए कहा कि जाओ, सीख कर आओ। पहले नहीं भेजा था। हर एक चीज का अपना वक्त होता है। कई कई लोग कहते हैं कि राम बड़ा चतुर था। हो सकता है वह चतुर रहा हो। लक्ष्मण और परशुराम के संवाद में अक्सर ऐसा मालूम होता है कि जैसे बड़े भाई मजे में उकसा रहे हों छोटे भाई को, कि तुम ताना मारो, मैं तो हूँ ही, अगर मामला बिगड़ेगा तो बचा ही लूंगा, तुम जरा मामला बढ़ाते रहो। उसी तरह से, सूर्पणखा के मामले में, मालूम पड़ता है कि बड़े भाई साहब छोटे भाई को अगर उकसा नहीं रहे हैं तो कम से कम मजा तो जरूर ले रहे हैं। आप देखते होंगे कि जिन्दगी मे भी, जब कभी किसी दल के 2-3 लोग होते हैं तो वे आपस में चाहे पहले बातचीत हुई हो या न हुई हो, एक ऐसा इंतजाम-सा कर लिया करते हैं कि एक तो दुश्मन को जरा शान्त करेगा और अपने आदमी को जरा डाँटेगा-डूँटेगा तब दूसरा जरा गुस्से में बोलेगा, और फिर दोनों मिल कर उसके ऊपर हावी हो जाएँगे। खैर। राम ने लक्ष्मण को कभी भी रावण के पास लड़ाई के दौरान मे नही भेजा। जब रावण मर रहा था, तब भेजा। लक्ष्मण लौट कर आया, बोला—रावण तो कुछ बोलने को ही तैयार नही। तब राम ने उससे पूछा—तुमने किया क्या था? लक्ष्मण ने कहा, मैं वहाँ गया और मैंने रावण से कहा कि मुझे तुम राजनीतिशास्त्र बताओ। तब राम ने पूछा—तुम कहाँ खड़े हुए थे। लक्ष्मण ने कहा—कि रावण लेटा पड़ा था, मर रहा था और मैं उसके सिर की बगल में खड़ा हुआ। तो राम बोले—इस तरह से सीखा करते हो, जाओ, पैर के पास खड़े रहो, फिर सवाल पूछो और तब जवाब मांगो! लक्ष्मण फिर गया, पैर के पास खड़ा रहा तो उसे जवाब मिला, ऐसे बढ़िया-बढ़िया किस्से हैं।

छोटा-सा किस्सा है कि दुश्मन है, बहुत बड़ी लड़ाई लड़ी गयी और जब दुश्मन मर गया तब उसके पास अपना आदमी जाता है; मर गया तब। पहले नहीं। मुमकिन है, मेरे किस्से को मेरे ही खिलाफ कुछ लोग इस्तेमाल कर दें और कहें कि तुम इस किस्से को बता रहे हो, तुम्हें जाना चाहिए, लेकिन रावण मरे तब लक्ष्मण जाता है, मरने के पहले नहीं। और जाकर सिरहाने नहीं खड़ा होना चाहिए, पैताने खड़ा होना चाहिए। जब बैठो वही मेज पर तो देख कर बैठो कि बगल वाले को कोई तकलीफ तो नहीं हो रही है। कहीं अपनी जगह से तो ज्यादा नहीं ले रहे हो वगैरह-वगैरह। खैर। यहाँ मुझे सिर्फ इतना ही बताना है कि इन किस्सों की एक-एक तफसील में, एक-एक संवाद में, एक-एक बात में मजा भरा है। जरूरी नहीं है कि इन किस्सों को आप सही समझें। जरूरी नहीं है कि आप उनको धर्म मानें। उनको आप सिर्फ उपन्यास की तरह ले, एक ऐसा उपन्यास जो दस-बीस-पचास हजार आदमियों तक नहीं, बल्कि जो करोड़ों लोगों तक 5 हजार बरसों से चला आया है, और पता नहीं, कब तक चला जाता रहेगा।

☐ ☐

कृष्ण

☐

डा० राम मनोहर लोहिया

(कृष्ण के सम्बन्ध में कितनों ने लिखा है पर लोहिया जी की दृष्टि अनोखी है—पैनी, मौलिक और व्यापक। बात कहने की उनकी शैली इतनी रोचक है कि पाठक बँध सा जाता है। आप भी इसका अनुभव करें।)

कृष्ण की सभी चीजें दो हैं, दो माँ दो बाप, दो नगर, दो प्रेमिकाएँ या यों कहिये अनेक। जो चीजें संसारी अर्थ में बाद की या स्वीकृत या सामाजिक है, वह असली से भी श्रेष्ठ और प्रिय हो गयी है। यों कृष्ण देवकी-नन्दन भी हैं, लेकिन यशोदा-नन्दन अधिक। ऐसे लोग मिल सकते हैं जो कृष्ण को असली माँ, पेट-माँ का नाम न जानते हों, लेकिन बाद वाली, दूध वाली यशोदा का नाम न जानने वाला कोई निराला ही होगा। उसी तरह वसुदेव कुछ हारे हुए से हैं, और नन्द को असली बाप से कुछ बढ़ कर ही रुतबा मिल गया है। द्वारका और मथुरा की होड़ करना कुछ ठीक नहीं, क्योंकि भूगोल और इतिहास ने मथुरा का साथ दिया है। किन्तु यदि कृष्ण की चले, तो द्वारका द्वारकाधीश, मथुरा और मथुरापति से अधिक प्रिय रहें। मथुरा से तो बाल-लीला और यौवन क्रीड़ा की दृष्टि से वृन्दावन और बरसाना वगैरह अधिक महत्वपूर्ण हैं। प्रेमिकाओं का प्रश्न ज़रा उलझा हुआ है। किनकी तुलना की जाय, रुक्मिणी और सत्यभामा की, राधा और रुक्मिणी की, या राधा और द्रौपदी की। प्रेमिका का अर्थ संकुचित न कर सखा-सखी भाव को ले के चलना होगा। अब तो मीरा ने भी होड़ लगानी शुरू की है। जो हो, अभी तो राधा ही बड़भागिनी है कि तीन लोक का स्वामी उसके चरणों का दास है। समय का फेर और महाकाल शायद द्रौपदी या मीरा को राधा की जगह तक पहुँचाये, लेकिन इतना सम्भव नहीं लगता। हर हालत में, रुक्मिणी राधा से टक्कर कभी नहीं ले सकेगी।

मनुष्य की शारीरिक सीमा उसका चमड़ा और नख है। यह शारीरिक सीमा, उसे अपना दोस्त, एक माँ, एक बाप, एक दर्शन वगैरह देती रहती है, किन्तु मनुष्य हमेशा इस सीमा से बाहर उछलने की कोशिश करता रहता है, मन ही के द्वारा उछल सकता है। कृष्ण उसी तत्व और महान प्रेम का नाम है जो मन को प्रदत्त-सीमाओं से उलाँघता-उलाँघता सबमें मिला देता है, किसी से भी अलग नहीं रखता। क्योंकि कृष्ण तो घटनाक्रमों वाली मनुष्य लीला है, केवल सिद्धान्तों और तत्वों का विवेचन नहीं, इसलिए उसकी सभी चीजें अपनी और एक की सीमा में न रह कर दो और

निरापनी हो गयी है। यों दोनों में ही कृष्ण का तो निरापना है, किन्तु लीला के तौर पर अपनी माँ, बीवी और नगरी से परायी बढ़ गयी है। परायी को अपनी से बढ़ने देना भी तो एक मानी में अपनेपन को खत्म करना है। मथुरा का एकाधिपत्य खत्म करती है द्वारका, लेकिन उस क्रम में द्वारका अपना श्रेष्ठत्व जैसा क़ायम कर लेती है।

भारतीय साहित्य में माँ है यशोदा और लला हैं कृष्ण ! माँ-लाल का इनमें बढ़ कर मुझे तो कोई सम्बन्ध मालूम नहीं, किन्तु श्रेष्ठत्व भर ही तो क़ायम होता है। मथुरा हटती नहीं और न रुक्मिणी, जो मगध में जरासंध से लेकर शिशुपाल होती हुई हस्तिनापुर के द्रौपदी और पाँच पाण्डवों तक एकरूपता बनाये रखती है। परकीया स्वकीया से बढ़ कर उसे खतम तो करता नहीं, केवल अपने और पराये की दीवारों को ढहा देता है। लोभ, मोह, ईर्ष्या, भय इत्यादि की चहार-दीवारी से अपना या स्वकीय छुटकारा पा जाना है। सब अपना और अपना सब हो जाता है। बड़ी रसीली लीला है कृष्ण की, इस राधा-कृष्ण या द्रौपदी-सखा और रुक्मिणी-रमण की कहीं चर्म सीमित शरीर में, प्रेमानन्द और खून की गर्मी और तेज़ी में, कमी नहीं। लेकिन यह सब रहते हुए भी कैसा निरापना !

कृष्ण है कौन ? गिरधारी, गिरधर, गोपाल ! वैसे तो मुरलीधर और चक्रधर भी है, लेकिन कृष्ण का गुह्यतम रूप तो गिरधर गोपाल में ही निखरता है। कान्हा को गोवर्धन पर्वत अपनी कानी उँगली पर क्यों उठाना पड़ा था। इसलिए न कि उसने इन्द्र की पूजा बन्द करवा दी और इन्द्र का भोग खुद खा गया, और भी खाता रहा। इन्द्र ने नाराज़ होकर पानी, ओला, पत्थर बरसाना शुरू किया तभी तो कृष्ण को गोवर्धन उठाकर अपने गो और गोपालों की रक्षा करनी पड़ी। कृष्ण ने इन्द्र का भोग खुद क्यों खाना चाहा ? यशोदा और कृष्ण का इस संबन्ध में गुह्य विवाद है। माँ, इन्द्र को भोग लगानी चाहती हैं, क्योंकि वह बड़ा देवता है, सिर्फ़ बास से ही तृप्त हो जाता है, और उसकी बड़ी शक्ति है, प्रसन्न होने पर बहुत वर देता है और नाराज़ होने पर तकलीफ। बेटा कहता है कि वह इन्द्र से भी बड़ा देवता है, क्योंकि वह तो बास से तृप्त नहीं होता और बहुत खा सकता है और उसके खाने की कोई सीमा नहीं है। यही है कृष्ण लीला का गुह्य-रहस्य। बास लेने वाले देवताओं से खाने वाले देवताओं तक की भारत-यात्रा ही कृष्ण लीला है।

कृष्ण के पहले, भारतीय देव, आसमान के देवता हैं। निस्संदेह, अवतार कृष्ण के पहले से शुरू हो गये। किन्तु त्रेता का राम ऐसा मनुष्य है जो निरन्तर देव बनने की कोशिश करता रहा। इसलिए उसमें आसमान के देवता का अंश कुछ अधिक है। द्वापर का कृष्ण एक-सा देव है, जो निरन्तर मनुष्य बनने की कोशिश करता रहा। उसमें उसे सम्पूर्ण सफलता मिली। कृष्ण सम्पूर्ण और अबोध मनुष्य है, खूब खाया-खिलाया, खूब प्यार किया और प्यार सिखाया, जनगण की रक्षा की और उसका रास्ता बताया, निर्लिप्त भोगी, महान त्यागी और योगी बना।

इस प्रसंग में यह प्रश्न बेमतलब है कि मनुष्य के लिए, विशेषकर राजकीय मनुष्य के लिए, राम का रास्ता सुकर और उचित है या कृष्ण का। मतलब की बात तो यह है कि कृष्ण देव होता हुआ निरन्तर मनुष्य बनता रहा। देव और निःस्व और असीमित होने के नाते कृष्ण में जो असम्भव मनुष्यताएँ है, जैसे झूठ, धोखा, और हत्या, उनकी नक़ल करने वाले लोग मूर्ख हैं, उसमें कृष्ण का क्या दोष। कृष्ण की सम्भव और पूर्ण मनुष्यताओं पर ध्यान देना ही उचित है, और एकाग्र ध्यान। कृष्ण ने इन्द्र को हराया, बास लेने वाले देवों को भगाया, खाने वाले देवों को प्रति-

ष्ठित किया, हाड़, खून, मांस वाले मनुष्य को देव बनाया, जनगण में भावना जाग्रत की कि देव को आसमान में मत खोजो, यहीं अपने बीच, पृथ्वी वाला देव खाता है, प्यार करता है, फिर रक्षा करता है।

कृष्ण जो कुछ करता था, जम कर करता था, खाता था जम कर, प्यार करता था जम कर, रक्षा भी जम कर करता था, पूर्ण भोग, पूर्ण प्यार, पूर्ण रक्षा। कृष्ण की सभी क्रियाएँ उसकी शक्ति के पूरे इस्तेमाल से ओत-प्रोत रहती थीं, शक्ति का कोई अंश बचा कर नहीं रखता था। कंजूस बिलकुल नहीं था, ऐसा दिलफेंक, ऐसा शरीरफेंक, चाहे मनुष्यों में सम्भव न हो, लेकिन मनुष्य ही हो सकता है मनुष्य का आदर्श, चाहे जिसके पहुँचने तक हमेशा एक सीढ़ी पहले रुक जाना पड़ता हो। कृष्ण ने खुद गीत गाया है स्थितिप्रज्ञ का, ऐसे मनुष्य का जो अपनी शक्ति का पूरा और जम कर इस्तेमाल करता हो, 'कूर्मांगानीव' बताया है ऐसे मनुष्य को। कछुए की तरह यह मनुष्य अपने अंगों को बटोरता है, अपनी इन्द्रियों पर इतना सम्पूर्ण प्रभुत्व है इसको इन्द्रियों से उन्हे पूरी तरह हटा लेता है। कुछ लोग कहेंगे कि यह तो भोग उल्टा हुआ। ऐसी बात नहीं। जो करना, जम कर—भोग भी, त्याग भी। जमा हुआ भोगी कृष्ण, जमा हुआ योगी तो था ही। शायद दोनों में विशेष अन्तर नहीं। फिर भी, कृष्ण ने एकाग्री परिभाषा दी, अचल स्थितप्रज्ञ की, चलस्थितप्रज्ञ की नहीं। उसकी परिभाषा तो दी जो इन्द्रियों से इन्द्रियों को हटाकर पूर्ण प्रभुता निखारता हो, उसकी नहीं जो इन्द्रियों को इन्द्रियों में लपेट कर, घोल कर। कृष्ण खुद तो दोनो था, परिभाषा में एकांगी रह गया। जो काम जिस समय कृष्ण करता था, उसमें अपने समग्र अंगों का एकाग्र प्रयोग करता था, अपने लिए कुछ भी नही बचाता था, अपना तो था ही नहीं कुछ उसमें। 'कूर्मांगानीव' के साथ-साथ 'समग्र-अंग-एकाग्री' भी परिभाषा में शामिल होना चाहिये था। जो काम करो, जम कर करो, अपना पूरा मन और शरीर उसमें फेंक कर। देवता बनने की कोशिश में मनुष्य कुछ कृपण हो गया है, पूर्ण आत्मसमर्पण वह कुछ भूल सा गया है। जरूरी नहीं है कि वह अपने आपको किसी दूसरे के समर्पण करे। अपने ही कामों में पूरा आत्मसमर्पण करे। झाड़ू लगाये तो जम कर या अपनी इन्द्रियों का पूरा प्रयोग कर, युद्ध में रथ चलाये तो जम कर, श्यामा मालिन बनकर राधा को फूल बेचने जाये तो जम कर। जीवन का दर्शन ढूँढ़े और गाये तो जम कर। कृष्ण ललकारता है मनुष्य को अकृपण बनने के लिए, अपनी शक्ति को पूरी तरह एकाग्र उछालने के लिए। मनुष्य करता कुछ है और ध्यान कुछ दूसरी तरफ़ रहता है। झाड़ू देता है, फिर भी कूड़ा कोनों में पड़ा रहता है। एकाग्र ध्यान न हो तो इन्द्रियों का अकृपण प्रयोग कैसे हो। 'कूर्मांगानीव' और 'समग्र-अंग-एकाग्री' मनुष्य को बनाना है। यही तो देवता की मनुष्य बनने की कोशिश है। देखो, माँ! इन्द्र खाली वास लेता है, मैं तो खाता हूँ।

आसमान के देवताओं को जो भगाये, उसे बड़े पराक्रम और तकलीफ़ के लिए तैयार रहना चाहिए, तभी कृष्ण को पूरा गोवर्धन पर्वत अपनी छोटी उँगली पर उठाना पड़ा इन्द्र को वह नाराज़ कर देता और अपनी गउओं की रक्षा न करता, तो ऐसा कृष्ण किस काम का। फिर कृष्ण के रक्षा-युग का आरम्भ होने वाला था। एक तरह से बाल और युवा-लीला का शेष ही गिरिधर-लीला है। कालिय-दहन और कंस-वध उसके आस-पास के हैं। गोवर्धन उठाने में कृष्ण की उँगली दुखी होगी, अपने गोपों और सखाओं को कुछ झुंझला कर सहारा देने को कहा होगा। माँ को कुछ इतरा कर उँगली दूखने की शिकायत की होगी। गोपियों से आँख लड़ाते हुए अपनी मुस्कान द्वारा कहा होगा। उसके पराक्रम पर अचरज करने के लिए राधा और कृष्ण की तो आपस में गम्भीर और प्रफुल्लित मुद्रा रही होगी। कहना कठिन है कि किसकी ओर कृष्ण ने अधिक निहारा

होगा, माँ की ओर इतरा कर, या राधा की ओर प्रफुल्ल होकर। उंगली बेचारे की दुख रही थी। अब तक दुख रही है, गोवर्धन में तो यही लगता है। वहीं पर मानस गंगा है : जब कृष्ण ने गऊ वंश रूपी मानव को मारा था, राधा बिगड़ पड़ी और इस पाप से बचने के लिए उसने उसी स्थल पर कृष्ण से गंगा माँगी। बेचारे कृष्ण को कौन-कौन से असम्भव काम करने पड़े हैं। हर समय वह कुछ न करता रहा है दूसरों को सुखी बनाने के लिए। उसकी उँगली दुख रही है। चलो, उसको सहारा दें। गोवर्धन में सड़क चलते कुछ लोगों ने, जिसमें पंडे होते ही हैं, प्रश्न किया कि मैं कहाँ का हूँ ?

मैंने छेड़ते हुए उत्तर दिया, राम की अयोध्या का।

पंडों ने जवाब दिया, सब माया एक है।

जब मेरी छेड़ चलती रही तो एक ने कहा कि आखिर सत्तू वाले राम से गोवर्धन-वासियों का नेह कैसे चल सकता है। उनका दिल तो माखन-मिसरी वाले दिल से लगा है।

माखन-मिसरी वाला कृष्ण, सत्तू वाला राम कुछ सही है, पर उसकी अपनी उँगली अब तक दुख रही है।

एक बार मथुरा में सड़क में चलते एक पंडे से मेरी बातचीत हुई। पंडों की साधारण कसौटी में उस बातचीत का कोई नतीजा न निकला, न निकलने वाला था। लेकिन क्या मीठी मुस्कान से उस पंडे ने कहा कि जीवन में दो मीठी बातें ही तो सब कुछ हैं। कृष्ण मीठी बात करना सीख गया है, आसमान वाले देवताओं को भगा गया है, माखन-मिसरी वाले देवों की प्रतिष्ठा कर गया है। लेकिन, उसका अपना कौन-कौन-सा अंग अब तक दुख रहा है ?

कृष्ण की तरह एक और देवता हो गया है, जिसने मनुष्य बनने की कोशिश की। उसका राज्य संसार में अधिक फैला, शायद इसलिए कि वह ग़रीब बढ़ई का बेटा था और उसकी अपनी ज़िन्दगी में वैभव और ऐश न था शायद इसलिए कि जन-रक्षा का उसका अन्तिम काम ऐसा था कि उसकी उँगली सिर्फ़ न दुखी, उसके शरीर का रोम-रोम सिहरा और अंग-अंग टूट कर वह मरा। अब तक लोग उसका ध्यान करके अपने सीमा बाँधने वाले चमड़े के बाहर उछलते है। हो सकता है कि ईसूमसीह दुनिया में केवल इसलिए फैल गया है कि उसका विरोध उन रोमियों से था जो आज की मालिक सभ्यता के पुरखे हैं। ईसू रोमियों पर चढ़ा। रोमी आज के यूरोपियों पर चढ़े। शायद एक कारण यह भी हो कि कृष्ण-लीला का मजा ब्रज और भारत-भूमि के कण-कण से इतना लिपटा है कि कृष्ण की नियति कठिन है। जो भी हो, कृष्ण और क्रिस्टोस दोनों ने आसमान के देवताओं को भगाया। दोनों के नाम और कहानी में भी कहीं-कहीं सादृश्य है। कभी दो महाजनों की तुलना नहीं करनी चाहिये। दोनों अपने क्षेत्र में श्रेष्ठ हैं : फिर भी, क्रिस्टोस प्रेम के आत्मोत्सर्गी अंग के लिए बेजोड़ और कृष्ण सम्पूर्ण मनुष्य-लीला के लिये। कभी कृष्ण के वंशज भारतीय शक्तिशाली बनेंगे, तो सम्भव है उसकी लीला दुनिया भर में रस फैलाए।

कृष्ण बहुत अधिक हिन्दुस्तान के साथ जुड़ा हुआ है। हिन्दुस्तान के ज्यादातर देव और अवतार अपनी मिट्टी के साथ सने हुए हैं। मिट्टी से अलग करने पर वे बहुत कुछ निष्प्राण हो जाते हैं। त्रेता का राम हिन्दुस्तान की उत्तर-दक्षिण एकता का देव है। द्वापर का कृष्ण देश की पूर्व-पश्चिम एकता का देव। राम उत्तर-दक्षिण और कृष्ण पूर्व-पश्चिम धुरी पर घूमे। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि देश को उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम एक करना ही राम और कृष्ण का धर्म था। यों सभी धर्मों की उत्पत्ति राजनीति से है, बिखरे हुए स्वजनों को इकट्ठा करना, कलह मिटाना,

सुलह कराना और हो सके तो अपने और सबकी सीमा को ढहाना। साथ ही जीवन को ऊँचा उठाना, सदाचार की दृष्टि से और आत्म-चिन्तन की भी।

देश की एकता और समाज के शुद्धि सम्बन्धी कारणों और आवश्यकताओं से संसार के सभी महान् धर्मों की उत्पत्ति हुई है। अलबत्ता धर्म इन आवश्यकताओं से ऊपर उठकर मनुष्य को पूर्ण करने की भी चेष्टा करता है! किन्तु भारतीय धर्म इन आवश्यकताओं से जितना ओत-प्रोत है, उतना और कोई धर्म नहीं। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि राम और कृष्ण के क़िस्से तो मनगढ़न्त गाथाएँ हैं, जिनसे एक अद्वितीय उद्देश्य हासिल करना था, इतने बड़े देश के उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम को एकरूपता में बाँधना था। इस विलक्षण उद्देश्य के अनुरूप ही ये विलक्षण क़िस्से बने। मेरा मतलब यह नहीं कि सब के सब क़िस्से झूठे हैं। गोवर्धन पर्वत का क़िस्सा जिस रूप में प्रचलित है उस रूप में झूठा तो है ही, साथ-साथ न जाने कितने और क़िस्से, जो कितने और आदमियों के रहे हों, कृष्ण अथवा राम के साथ जुड़ गये हैं। जोड़ने वालों को कमाल हासिल हुआ। यह भी हो सकता है कि कोई न कोई चमत्कारिक पुरुष राम और कृष्ण के नाम के हुए हों। चमत्कार भी उनका संसार के इतिहास में अनहोना रहा हो। लेकिन उन गाथाकारों का यह कम अनहोना चमत्कार नहीं है, जिन्होंने राम और कृष्ण के जीवन की घटनाओं को उस सिलसिले और तफ़सील में बाँधा है कि इतिहास भी उसके सामने लजा गया है। आज के हिन्दुस्तानी राम और कृष्ण की गाथाओं की एक-एक तफ़सील को चाव से और सप्रमाण जानते हैं, जब कि ऐतिहासिक बुद्ध और अशोक उनके लिए धुंधली स्मृति मात्र रह गये हैं।

महाभारत हिन्दुस्तान की पूर्व-पश्चिम यात्रा है, जिस तरह रामायण उत्तर-दक्षिण यात्रा है। पूर्व-पश्चिम यात्रा का नायक कृष्ण है, जिस तरह उत्तर-दक्षिण यात्रा का नायक राम है—मणिपुर से द्वारिका तक कृष्ण या उसके सहचरों का पराक्रम हुआ है, जैसे जनकपुर से श्रीलंका तक राम या उसके सहचरों का। राम का काम अपेक्षाकृत सहज था। कम से कम उस काम में एक-रसता अधिक थी। राम का मुकाबला या दोस्ती हुई भील, किरात, किन्नर, राक्षस इत्यादि से, जो उसकी अपनी सभ्यता से अलग थे। राम का काम था, इनको अपने में शामिल करना और उनको अपनी सभ्यता में ढाल देना चाहे हराये बिना या हराने के बाद।

कृष्ण को वास्ता पड़ा अपने ही लोगों से, एक ही सभ्यता के दो अंगों में से एक को लेकर भारत की पूर्व-पश्चिम एकता कृष्ण को स्थापित करनी पड़ी। इस काम में पेंच ज्यादा थे। तरह-तरह की सन्धि और विग्रह का क्रम चला। न जाने कितनी चालाकियाँ और धूर्तताएँ भी हुईं। राजनीति का निचोड़ भी सामने आया—ऐसा छन कर जैसा फिर और कुछ न हुआ। अनेकों ऊँचाइयाँ भी छुई गयीं। दिलचस्प क़िस्से भी खूब हुए। जैसी पूर्व-पश्चिम राजनीति जटिल थी, वैसे ही मनुष्यों के आपसी सम्बन्ध भी, खास कर मर्द-औरत के। अर्जुन की मनीपुर वाली चित्रांगदा, भीम की हिडिम्बा और पांचाली का तो कहना ही क्या। कृष्ण की बुआ कुन्ती का एक बेटा था अर्जुन, दूसरा कर्ण, दोनों अलग-अलग बापों से, और कृष्ण ने अर्जुन को कर्ण का छल-वध करने के लिए उकसाया। फिर भी, क्यों जीवन का निचोड़ छन कर आया। क्योंकि कृष्ण जैसा निःस्व मनुष्य न कभी हुआ और उससे बढ़कर तो कभी होना ही असम्भव है। राम उत्तर-दक्षिण एकता का न सिर्फ़ नायक बना, राजा भी हुआ। कृष्ण तो अपनी मुरली बजाता रहा। महाभारत की नायिका द्रौपदी से महाभारत के नायक कृष्ण ने कभी कुछ लिया नहीं, दिया ही।

पूर्व-पश्चिम एकता की दो धुरियाँ स्पष्ट हीं कृष्ण-काल में थीं। एक पटना-गया की मगध-धुरी और दूसरी हस्तिनापुर-इन्द्रप्रस्थ की कुरु-धुरी। मगधधुरी का भी फैलाव स्वयं कृष्ण की मथुरा तक था, जहाँ मगध-नरेश जरासंध का दामाद कंस राज्य करता था। बीच में शिशुपाल आदि मगध के आश्रित मित्र थे। मगध-धुरी के खिलाफ़ कुरु-धुरी का सशक्त निर्माता कृष्ण था। कितना बड़ा फैलाव किया कृष्ण ने इस धुरी का। मणिपुर से लेकर पश्चिम में द्वारका तक का इस कुरु-धुरी में समावेश किया। देश की दोनों सीमाओं, पूर्व की पहाड़ी सीमा और पश्चिम की समुद्री सीमा को फाँसा और बाँधा, इस धुरी को कायम और शक्तिशाली करने के लिए कृष्ण को कितनी मेहनत और कितने पराक्रम करने पड़े, और कितनी लम्बी सूझ सोचनी पड़ी। उसने पहला वार मथुरा में मगधराज के दामाद पर किया। उस समय सारे हिन्दुस्तान में यह वार गूँजा होगा। कृष्ण की यह पहली ललकार थी, वाणी द्वारा नहीं। उसने कर्म द्वारा रण-भेरी बजायी। कौन अनसुनी कर सकता था? सबको निमन्त्रण हो गया, यह सोचने के लिए कि मगध राजा को अथवा जिसे कृष्ण कहे, उसे सम्राट के रूप में चुने, अन्तिम चुनाव भी कृष्ण ने बड़े छली रूप में रखा। कुरु-वंश में ही न्याय-अन्याय के आधार पर दो टुकड़े हुए और उनमें अन्यायी टुकड़ी के साथ मगध-धुरी को जुड़वा दिया। संसार ने सोचा होगा कि वह तो कुरुवंश का अन्दरूनी और आपसी झगड़ा है। कृष्ण जानता था कि वह तो इन्द्रप्रस्थ-हस्तिनापुर की कुरु-धुरी और राजगिरि की मगध-धुरी का झगड़ा है।

राजगिरि का राज्य कंस-वध पर तिलमिला उठा होगा। कृष्ण ने पहले ही वार में मगध की पश्चिमी ताकत को खतम-सा कर दिया। लेकिन अभी तो ताकत बहुत ज्यादा बटोरनी और बढ़ानी थी। यह तो सिर्फ़ आरम्भ था। आरम्भ अच्छा हुआ। सारे संसार को मालूम हो गया। लेकिन कृष्ण कोई बुद्धू थोड़े ही था जो आरम्भ की लड़ाई को अन्त की बना देता। उसके पास अभी इतनी ताकत तो थी नहीं जो कंस के ससुर और उसकी पूरे हिन्दुस्तान की शक्ति से जूझ बैठता। वार करके, संसार को डंका सुना के कृष्ण भाग गया। भागा भी बड़ी दूर, द्वारिका में। तभी से उनका नाम रणछोड़दास पड़ा। गुजरात में आज भी हजारों लोग, शायद एक लाख से अधिक लोग होंगे – जिनका नाम रणछोड़दास है। पहले मैं इस नाम पर हँसा करता था, मुस्कान तो कभी न छोड़ूँगा। यों हिन्दुस्तान में और भी देवता हैं, जिन्होंने अपना पराक्रम भाग कर दिखाया जैसे ज्ञानवापी के शिव ने। यह पुराना देश है। लड़ते-लड़ते थकी हड्डियों को भागने का अवसर मिलना चाहिये। लेकिन कृष्ण थकी पिण्डियों के कारण भाग न सका, नहीं भागा। वह भागा जवानी की बढ़ती हड्डियों के कारण। अभी हड्डियों को बढ़ने और फैलाने का मौका चाहिए था। कृष्ण की पहली लड़ाई तो आजकल की छापामार लड़ाई की तरह थी, वार करो और भागो। अफ़सोस यह ही है कि कुछ भक्त लोग भागने ही में मज़ा लेते हैं।

द्वारिका मथुरा से सीधे फ़ासले पर करीब सात सौ मील है। वर्तमान सड़कों की यदि दूरी नापी जाय तो करीब 1050 मील होती है। बिचली दूरी इस तरह करीब 850 मील होती है। कृष्ण अपने शत्रु से बड़ी दूर तो निकल ही गया, साथ ही साथ देश की पूर्व-पश्चिम एकता हासिल करने के लिए उसने पश्चिम के आखिरी नाके को बाँध लिया। बाद में पाँचों पाण्डवों के वनवास युग में अर्जुन की चित्रांगदा और भीम की हिडिम्बा के जरिये उसने पूर्व के आखिरी नाके को भी बाँधा। इन फ़ासलों को नापने के लिए मथुरा से अयोध्या, अयोध्या से राजमहल और राजमहल से इम्फाल की दूरी जानना जरूरी है। यही रहे होंगे उस समय के महान् राजमार्ग। मथुरा से अयोध्या की बिचली दूरी करीब तीन सौ मील है। अयोध्या से राजमहल करीब चार सौ

सत्तर मील है। राजमहल से इम्फाल की यह बिचली दूरी करीब सवा पाँच सौ मील है। यों वर्तमान सड़कों से फ़ासला करीब आठ सौ पचास मील और सीधा फ़ासला करीब तीन सौ अस्सी मील है। इस तरह मथुरा से इम्फाल का फ़ासला उस समय के राजमार्ग द्वारा करीब सोलह सौ मील रहा होगा। कुरु धुरी के केन्द्र पर कब्जा करने और उसे सशक्त बनाने के पहले कृष्ण केन्द्र से आठ सौ मील दूर भागा। और अपने सहचरों और चेलों को उसने सोलह सौ मील दूर तक घुमाया। पूर्व-पश्चिम की पूरी भारत यात्रा हो गयी। उस समय की भारतीय राजनीति को समझने के लिए कुछ दूरियाँ जानना और ज़रूरी है।

मथुरा से बनारस का फ़ासला करीब तीन सौ सत्तर मील और मथुरा से पटना करीब पाँच सौ मील है। दिल्ली से, जो तब इन्द्रप्रस्थ थी, मथुरा का फ़ासला करीब नब्बे मील है। पटने से कलकत्ते का फ़ासला करीब सवा तीन सौ मील है। कलकत्ते के फ़ासले का कोई विशेष तात्पर्य नहीं, सिर्फ़ इतना ही कि कलकत्ता भी कुछ समय तक हिन्दुस्तान की राजधानी रहा है। चाहे गुलाम हिन्दुस्तान की। मगध-धुरी का पुनर्जन्म एक अर्थ में कलकत्ते में हुआ। जिस तरह कृष्णकालीन मगध-धुरी के लिए राजगिरि केन्द्र है, उसी तरह ऐतिहासिक मगध-धुरी के लिए पटना या पाटलिपुत्र केन्द्र है और इन दोनों का फ़ासला करीब चालीस मील है। पटना-राजगिरि केन्द्र का पुनर्जन्म कलकत्ते में होता है, इसका इतिहास के विद्यार्थी अध्ययन करें, चाहे अध्ययन करते समय सन्तापपूर्ण विवेचन करें कि यह काम विदेशी तत्त्वावधान में क्यों हुआ।

कृष्ण ने मगध-धुरी का नाश करके कुरु-धुरी की क्यों प्रतिष्ठा करनी चाही? इसका एक उत्तर तो साफ़ है। भारतीय जनगण का बाहुल्य उस समय उत्तर और पश्चिम में था, जो राजगिरि और पटना से बहुत दूर पड़ जाता था: उसके अलावा मगध-धुरी कुछ पुरानी बन चुकी थी, शक्तिशाली थी, किन्तु उसका फैलाव संकुचित था। कुरु-धुरी नयी थी, और कृष्ण इसकी शक्ति और फैलाव दोनों का ही सर्वशक्तिसम्पन्न निर्माता था, मगध-धुरी को जिस तरह चाहता शायद न मोड़ सकता। कुरु-धुरी को अपनी इच्छा के अनुसार मोड़ और फैला सकता था। सारे देश को बाँधना जो था उसे। कृष्ण त्रिकालदर्शी था। उसने देख लिया होगा कि उत्तर-पश्चिम में आगे चल कर यूनानियों, हूणों; पठानों मुगलों आदि के आक्रमण होंगे। इसलिए भारतीय एकता की धुरी का केन्द्र कहीं वही रखना चाहिए, जो इन आक्रमणों का मुकाबला कर सकें। लेकिन त्रिकालदर्शी क्यों न देख पाया कि इन विदेशी आक्रमणों के पहले ही मगध-धुरी बदला चुकाएगी और सैकड़ों वर्ष तक भारत पर अपना प्रभुत्व कायम करेगी और आक्रमण के समय तक, कृष्ण की भूमि के नजदीक यानी कन्नौज और उज्जैन तक खिसक चुकी होगी, किन्तु अशक्त अवस्था में। त्रिकालदर्शी ने देखा शायद यह सब कुछ देखा हो, लेकिन कुछ न कर सका हो। वह हमेशा के लिए अपने देशवासियों को कैसे ज्ञानी और साधु दोनों बनाता। वह तो केवल रास्ता दिखा सकता था। रास्ते में भी शायद त्रुटि थी। त्रिकालदर्शी को यह भी देखना चाहिए कि उसके रास्ते पर ज्ञानी ही नहीं, अनाड़ी भी चलेंगे और वे कितना भारी नुकसान उठायेंगे। राम के रास्ते पर चल कर अनाड़ी का भी अधिक नहीं बिगड़ता, चाहे बनना भी कम होता हो। अनाड़ी ने कुरु-पांचाल संधि का क्या किया?

कुरु-धुरी का आधार-शिला थी कुरुपांचाल-संधि। आसपास के इन दोनों इलाकों का वज्र समान एकता कायम करना था सो कृष्ण ने उन लीलाओं के द्वारा की, जिनसे पांचाली का विवाह पाँचों पाण्डवों से हो गया। यह पांचाली भी अद्भुत नारी थी। द्रौपदी से बढ़कर भारत

की कोई प्रखरमुखी और ज्ञानी नारी नहीं। कैसे कुरु सभा को उत्तर देने के लिए ललकारती है कि जो आदमी अपने को हार चुका है, क्या दूसरे को दाँव पर रखने की उसमें स्वतन्त्र सत्ता है।

पाँचों पाण्डव और अर्जुन भी उसके सामने फीके थे। यह कृष्णा तो कृष्ण के ही लायक थी। महाभारत का नायक कृष्ण, नायिका कृष्णा। कृष्णा और कृष्ण का सम्बन्ध भी विश्व-साहित्य में बेमिसाल है। दोनों सखा-सखी ही क्यों रहे। कभी कुछ और दोनों में से किसी ने होना चाहा? क्या सखा-सखी का सम्बन्ध पूर्णरूप से मन की देन थी या उसमें कुरु-धुरी के निर्माण और फैलाव का अंश था? जो हो, कृष्ण और कृष्णा का यह सम्बन्ध राधा और कृष्ण के सम्बन्ध से कम नहीं, लेकिन साहित्यिकों और भक्तों की नजर इस ओर कम पड़ी है। हो सकता है कि भारत की पूर्व-पश्चिम एकता के इस निर्माता को अपनी ही सीख के अनुसार केवल कर्म, न कि कर्मफल का अधिकारी होना पड़ा, शायद इसलिए कि यदि वह स्वयं कर्मफल-हेतु बन जाता, तो इतना अनहोना निर्माता हो ही नहीं सकता था। उसने कभी लालच न की कि अपनी मथुरा को ही धुरी-केन्द्र बनाए, उसके लिए दूसरों का इन्द्रप्रस्थ और हस्तिनापुर ही अच्छा रहा। उसी तरह कृष्णा को भी सखी रूप में रखा, जिसे संसार अपनी कहता है, वैसी न बनाया। कौन जाने कृष्ण के लिए यह सहज था या इसमें भी उसका दिल दुखा था।

कृष्णा अपने नाम के अनुरूप साँवली थी, महान् सुन्दरी रही होगी। उसकी बुद्धि का तेज, उसकी चकित हरिणी आँखों में चमकता रहा होगा। गोरी की अपेक्षा सुन्दर साँवली, नखशिख और अंग में अधिक सुडौल होती है। राधा गोरी रही होगी। बालक और युवक कृष्ण राधा में एकरस रहा। प्रौढ़ कृष्ण के मन पर कृष्णा छायी रही होगी, राधा और कृष्ण तो एक थे ही। कृष्ण की संतानें कब तक उसकी भूल दोहराती रहेंगी—बेखबर जवानी में गोरी से उलझना और अधेड़ अवस्था में श्यामा को निहारना। कृष्ण-कृष्णा सम्बन्ध में और कुछ हो न हो, भारतीय मर्दों को श्यामा की तुलना में गोरी के प्रति अपने पक्षपात पर मनन करना चाहिये।

रामायण की नायिका गोरी है। महाभारत की नायिका कृष्णा है। गोरी की अपेक्षा साँवली अधिक सजीव है। जो भी हो, इसी कृष्ण-कृष्णा सम्बन्ध का अनाड़ी हाथों फिर पुनर्जन्म हुआ। न रहा उसमें कर्मफल और कर्मफल-हेतु-त्याग। कृष्णा पांचालवारी कन्नौज के इलाके की थी, संयुक्ता भी। धुरी—केन्द्र इन्द्रप्रस्थ का अनाड़ी राजा पृथ्वीराज अपने पुरखे कृष्ण के रास्ते न चल सका। जिस पांचाली द्रौपदी के जरिये कुरु-धुरी की आधार शिला रखी गयी, उसी पांचाली संयुक्ता के जरिये दिल्ली-कन्नौज की होड़, जो विदेशियों के सफल आक्रमणों का कारण बना। कभी-कभी लगता है कि व्यक्ति का तो नहीं लेकिन इतिहास का पुनर्जन्म होता है, कभी फीका, कभी रंगीला। कहाँ द्रौपदी और कहाँ संयुक्ता, कहाँ कृष्ण और कहाँ पृथ्वीराज, यह सही है। फीका और मारात्मक पुनर्जन्म, लेकिन पुनर्जन्म तो है ही।

कृष्ण की कुरु-धुरी के और भी रहस्य रहे होंगे। साफ है कि राम आदर्शवादी एकरूप एकत्व का निर्माता और प्रतीक था। उसी तरह जरासंध भौतिकवादी एकत्व का निर्माता था आजकल कुछ लोग कृष्ण और जरासंध युद्ध को आदर्शवाद—भौतिकवाद का युद्ध मानने लगे हैं। यह सही जँचता है, किन्तु है अधूरा विवेचन। जरासंध भौतिकवादी एकरूप का इच्छुक था। बाद के मगधीय मौर्य और गुप्त राज्यों में कुछ हद तक इसी भौतिकवादी एकरूप एकत्व का प्रादुर्भाव हुआ और उसी के अनुरूप बौद्ध-धर्म का। कृष्ण आदर्शवादी बहुरूप एकत्व का निर्माता था। जहाँ

तक मुझे मालूम है, अभी तक भारत का निर्माण भौतिकवादी बहुरूप एकत्व के आधार पर कभी नहीं हुआ। फिर चमत्कार तो तब होगा जब आदर्शवाद और भौतिकवाद के मिले-जुले बहुरूप एकत्व के आधार पर भारत का निर्माण होगा। अभी तक तो कृष्ण का प्रयास ही सर्वाधिक माननीय मालूम होता है; चाहे अनुकरणीय राम का एकरूप एकत्व ही हो। कृष्ण की बहुरूपता में वह त्रिकाल-जीवन है जो औरों में नहीं।

कृष्ण यादव-शिरोमणि था, केवल क्षत्रिय-राज ही नहीं, शायद क्षत्री उतना नहीं था, जितना अहीर। तभी तो अहीरिन राधा की जगह अडिग है, क्षत्राणी द्रौपदी उसे हटा न पायी। विराट् विश्व और त्रिकाल के उपयुक्त कृष्ण, बहुरूप था, राम और जरासंध एकरूप थे, चाहे आदर्शवादी एकरूपता में केन्द्रीकरण और क्रूरता कम हो, लेकिन कुछ न कुछ केन्द्रीकरण तो दोनों में होता है। मौर्य और गुप्त राज्यों में कितना केन्द्रीकरण था, शायद क्रूरता थी।

बेचारे कृष्ण ने इतनी निःस्वार्थ मेहनत की, लेकिन जन-मन में राम ही आगे रहा। सिर्फ बंगाल में मुर्दे—"बोल हरि, हरि बोल" के उच्चारण से अपनी आखिरी यात्रा पर निकाले जाते हैं, नहीं तो कुछ दक्षिण को छोड़कर सारे भारत में हिन्दू मुर्दे—"राम नाम सत्य है" के ही साथ ले जाये जाते हैं। बंगाल में इतना तो नहीं, फिर भी उड़ीसा और असम में कृष्ण का स्थान अच्छा है। कहना मुश्किल है कि राम और कृष्ण में कौन उन्नीस, कौन बीस है। सबसे आश्चर्य की बात है कि स्वयं ब्रज के चारों ओर की भूमि के लोग भी वहाँ एक दूसरे को 'जै रामजी' से नमस्ते करते हैं। सड़क चलते अनजान लोगों को भी यह 'जै रामजी' बड़ा मीठा लगता है, शायद एक कारण यह भी हो।

राम, त्रेता के मीठे, शान्त और सुसंस्कृत युग का देव है। कृष्ण पके, जटिल, तीखे और प्रखर बुद्धियुग का देव है। राम गम्य है। कृष्ण अगम्य है। कृष्ण ने इतनी अधिक मेहनत की कि उसके वंशज उसे अपना अन्तिम आदर्श बनाने से घबराते हैं, यदि बनाते भी हैं, तो उसके मित्रभेद और कूटनीति की नकल करते हैं, उसका अथक निःस्व उनके लिये असाध्य रहता है। इसलिये कृष्ण हिन्दुस्तान में कर्म का देव न बन सका। कृष्ण ने कर्म राम से ज्यादा किये हैं। कितने सन्धि और विग्रह और प्रदेशों के आपसी सम्बन्धों के धागे उसे पलटने पड़ते थे। यह बड़ी मेहनत और बड़ा पराक्रम था। इसके यह मतलब नहीं कि प्रदेशों के आपसी सम्बन्धों में कृष्ण-नीति अब भी चलायी जाये। कृष्ण जो पूर्व पश्चिम की एकता दे गया, उसी के साथ-साथ उस नीति का औचित्य भी खतम हो गया। बच गया कृष्ण का मन और उसकी वाणी। और बच गया राम का कर्म। अभी तक हिन्दुस्तानी इन दोनों का समन्वय नहीं कर पाये हैं। करें, तो राम के कर्म में भी परिवर्तन आये। राम रोऊ है। इतना कि मर्यादा भंग होती है। कृष्ण कभी रोता नहीं। आँखें जरूर डब-डबाती हैं उसकी, कुछ मौकों पर, जैसे जब किसी सखी या नारी को दुष्ट लोग नंगा करने की कोशिश करते हैं।

कैसे मन और वाणी थे उस कृष्ण के। तब गोपियाँ और अब भी, जो चाहें वे, उसकी वाणी और मुरली की तान सुनकर रस-विभोर हो सकते हैं और अपने चमड़े के बाहर उछल सकते हैं। साथ ही कर्म-संग के त्याग, सुख-दुःख, शीत-उष्ण, जय-अजय के समत्व के योग और सब भूतों में एक अव्यय-भाव का सुरीला दर्शन, उसकी वाणी से सुन सकते हैं। संसार में एक कृष्ण ही हुआ, जिसने दर्शन को गीत बनाया।

वाणी की देवी द्रौपदी से कृष्ण का सम्बन्ध कैसा था क्या सखा-सखी का सम्बन्ध स्वयं

एक अन्तिम सीढ़ी और असीम मैदान है, जिसके बाद और किसी सीढ़ी और मैदान की जरूरत नहीं ? कृष्ण छलिया जरूर था, लेकिन कृष्णा से उसने कभी छल न किया। शायद वचन-बद्ध था, इसलिये जब कभी कृष्णा ने उसे याद किया, वह आया। स्त्री-पुरुष की किसलय-मित्रता को, आजकल के वैज्ञानिक अवरुद्ध रसिकता के नाम से पुकारते हैं। यह अवरोध सामाजिक या मन के आन्तरिक कारणों से हो सकता है। पाँचों पाण्डव कृष्ण के भाई थे और द्रौपदी कुरु-पांचाल सन्धि की आधारशिला थी। अवरोध के सभी कारण मौजूद थे। फिर भी हो सकता है कि कृष्ण को अपनी चित्तवृत्तियों का कभी विरोध न करना पड़ा हो। यह उसके लिये सहज और अन्तिम सम्बन्ध था, ठीक उतना ही सहज और अन्तिम और रसमय जैसा राधा से प्रेम का सम्बन्ध था। अगर यह सही है, तो कृष्ण-कृष्णा के सखा-सखी सम्बन्ध का ब्यौरा दुनिया में विख्यात होना चाहिये, और तफसील से, जिससे पुरुष-स्त्री सम्बन्ध का एक नया कमरा खुल सके। अगर राधा की छटा कृष्ण पर हमेशा छायी रहती है, तो कृष्णा की घटा भी उस पर छायी रहती है। अगर राधा की छटा निराली है, तो कृष्णा की घटा भी। छटा में तुष्टिप्रधान रस है, घटा में उत्कंठा-प्रधान कर्तव्य।

राधा-रस तो निराला है ही। राधा-कृष्ण एक हैं, राधा-कृष्ण का स्त्री रूप और कृष्ण राधा का पुरुष रूप। भारतीय साहित्य में राधा का जिक्र बहुत पुराना नहीं है, क्योंकि सबसे पहली बार पुराण में आया 'अनुराधा' के नाम से। नाम ही बताता है प्रेम और भक्ति का वह स्वरूप जो आत्मविभोर है, जिसमें सीमा बाँधने वाली चमड़ी रह नहीं जाती। आधुनिक समय में मीरा ने भी उस आत्म-विभोरता को पाने की कोशिश की। बहुत दूर तक गयी मीरा, शायद उतनी गयी जितना किसी सजीव देह को किसी याद के लिये जाना संभव हो। फिर भी मीरा की आत्मविभोरता में कुछ गर्मी थी। कृष्ण को तो कौन जला सकता है, झुलसा भी नहीं सकता, लेकिन मीरा के पास बैठने में उसे जरूर कुछ पसीना आये, कम से कम गरमी तो लगे। राधा न गरम है, न ठंडी, राधा पूर्ण है। मीरा की कहानी एक और अर्थ में बेजोड़ है। पद्मिनी मीरा की पुरखिन थी। दोनों चित्तौड़ की नायिकाएँ हैं। करीब ढाई सौ वर्ष का अन्तर है। कौन बड़ी है, वह पद्मिनी जो जौहर करती है। या यह मीरा, जिसे कृष्ण के लिये नाचने से कोई मना न कर सका। पुराने देश की यही प्रतिभा है। बड़ा जमाना देखा है इस हिन्दुस्तान ने। क्या पद्मिनी थकती-थकती सैकड़ों बरस में मीरा बन जाती है ? या मीरा ही पद्मिनी का श्रेष्ठ स्वरूप है ? अथवा जब प्रताप आता है, तब मीरा फिर पद्मिनी बनती है। हे त्रिकालदर्शी कृष्ण ! क्या तुम एक ही में मीरा और पद्मिनी नहीं बना सकते ?

राधा-रस का पूरा मजा तो ब्रज-रस में मिलता है। मैं सरयू और आयोध्या का बेटा हूँ। ब्रजरज में शायद कभी न लोट सकूँगा, लेकिन मन से तो लोट चुका हूँ। श्री राधा की नगरी बरसाने के पास एक रात रहकर मैंने राधा रानी के गीत सुने हैं।

कृष्ण बड़ा छलिया था। कभी श्यामा मालिन बन कर राधा को फूल बेचने आता था। कभी वैद्य बन कर आता था, प्रमाण देने कि राधा अभी ससुराल जाने लायक नहीं है। कभी राधा प्यारी को गोदाने का न्योता देने के लिये गोदनहारिन बन कर आता था। कभी वृन्दा की साड़ी पहन कर आता था और जब राधा उससे बार-बार चिपट कर अलग होती थी, शायद झुँझला कर, शायद इतरा कर, तब भी कृष्ण मुरारी को छट्ठी का दूध याद आता था, बैठकर समझाओ राधारानी को कि वृन्दा से आँखें नहीं लड़ायीं।

मैं समझता हूँ कि नारी अगर कहीं नर के बराबर हुई तो सिर्फ ब्रज में और कान्हा के पास। शायद इसीलिये आज भी हिन्दुस्तान की औरतें वृन्दावन में यमुना किनारे पेड़ में रूमाल जितनी चुनड़ी बाँधने का अभिनय करती है। कौन औरत नहीं चाहेगी कन्हैया से अपनी चुनड़ी हरवाना, क्योंकि औरत जानती है कि दुष्ट जनों के द्वारा चीरहरण के समय कृष्ण ही उनकी चुनड़ी अनन्त करेगा। शायद जो औरतें पेड़ से चीर बांधती हैं, उन्हें यह सब बताने पर वे लजाएँगी लेकिन उनके पुत्र- पुण्य आदि की कामना के पीछे भी कौन-सी सुषुप्त याद है।

ब्रज की मुरली लोगों को इतना विह्वल कैसे बना देती है कि वे कुरुक्षेत्र के कृष्ण को भूल जाएँ, और फिर मुझे तो लगता है कि अयोध्या का राम मणिपुर से द्वारका के कृष्ण को कभी भुलाने न देगा। जहाँ मैंने चीर बाँधने का अभिनय देखा, उसी के नीचे वृन्दावन के गन्दे पानी का नाला बहते देखा, जो जमुना से मिलता है और राधारानी के बरसाना की रंगीली गली में पैर बचा-बचाकर रखना पड़ता है कि कहीं किसी गन्दगी में न सन जाये। यह वही रंगीली गली है, जहां से बरसाने की औरतें हर होली पर लाठी लेकर निकलती है और जिसके नुक्कड़ पर नन्दगाँव के मर्द मोटे साफे बाँध और बड़ी ढालों से अपनी रक्षा करते हैं। राधा रानी अगर कहीं आ जाये, तो वह इन नालों और गन्दगियों को तो खतम करे ही, बरसाने की औरत के हाथ में इत्र, गुलाल और हल्के भीनी महक वाले रंग की पिचकारी थमाये और नन्द गांव के मर्दों को होली खेलने के लिए न्योता दे। ब्रज में महक नहीं है, केवल करील रह गये हैं। शीतलता खतम है। बरसाने में मैंने राधारानी की अहीरिनों को बहुत ढूंढ़ा। पाँच-दस घर होंगे। वहाँ बनियाइनों और ब्राह्मणियों का जमाव हो गया है, जब किसी जात में कोई बड़ा आदमी या बड़ी औरत हुई, तीर्थ-स्नान बना और मन्दिर और दुकानें देखते देखते आयीं। इन द्विज नारियों के चेहरे भी म्लान थे, गरीब, कृश और रोगी। कुछ लोग मुझे मूर्खतावश द्विज-शत्रु समझने लगे हैं। मैं तो द्विज-मित्र हूँ, इसलिए देख रहा हूँ कि राधारानी की गोपियों, मल्लाहिनों और चमाइनों को हटाकर द्विजनारियों ने भी अपनी कांति खो दी है। मिलाओ ब्रज की रजपुष्पों की महक, दो हिन्दुस्तान को कृष्ण की बहुरूपी एकता, हटाओ राम का एक रूपी द्विज-शूद्र धर्म, लेकिन चलो राम के मर्यादा वाले रास्ते पर, सच और नियम पालन कर।

सरयू और गंगा कर्त्तव्य की नदियाँ हैं। कर्त्तव्य कभी-कभी कठोर हो कर अन्यायी हो जाता है और नुकसान कर बैठता है। जमुना और चम्बल, केन तथा दूसरी जमुना-मुखी नदियाँ रस की नदियाँ हैं। रस में मिलन है, कलह मिटाता है। लेकिन लास्य भी है, जो गिरावट में मनुष्य को निकम्मा बना देता है। इसी रसभरी इतराती जमुना के किनारे कृष्ण ने अपनी लीला की, लेकिन कुरु-धुरी का केन्द्र उसने गंगा के किनारे ही बसाया। बाद में, हिन्दुस्तान के कुछ राज्य यमुना के किनारे बने और एक अब भी चल रहा है। जमुना क्या तुम कभी बदलोगी, आखिर गंगा में ही गिरती हो। क्या कभी इस भूमि पर रसमय कर्त्तव्य का उदय होगा। कृष्ण! कौन जाने तुम थे या नहीं कैसे तुमने राधा लीला को कुरु-लीला से निभाया। लोग कहते हैं कि युवा कृष्ण का प्रौढ़ कृष्ण से कोई सम्बन्ध नहीं। बताते हैं कि महाभारत में राधा का नाम तक नहीं। बात इतनी सच नहीं, क्योंकि शिशुपाल ने क्रोध में कृष्ण की पुरानी बातें साधारण तौर पर बिना नामकरण के बतायी हैं। सभ्य लोग ऐसे ज़िक्र असमय नहीं किया करते, जो समझते हैं वे, और जो नहीं समझते हैं वे भी। महाभारत में राधा का ज़िक्र हो कैसे सकता है। राधा का वर्णन तो वहीं होगा जहाँ तीन लोक का स्वामी उसका दास है। रास का कृष्ण और गीता का कृष्ण एक है। न जाने हज़ारों वर्ष से अभी तक पलड़ा इधर या उधर क्यों भारी हो जाता है?

बताओ कृष्ण!

नये मूल्यों की तलाश : धर्म के स्तर पर

□

पद्मश्री विद्यानिवास मिश्र

इसके पहले कि धर्म के क्षेत्र में नये मूल्यों की तलाश की बात करूँ, धर्म और मूल्य इन दो शब्दों को और अपने देश के आधुनिक सन्दर्भ को थोड़ा स्पष्ट करना आवश्यक होगा। धर्म शब्द मजहब या रेलीजन के अर्थ में या किसी विशेष कर्मकांड के अर्थ में नहीं प्रयोग कर रहा हूँ, ठीक-ठीक कहूँ तो धर्म का अर्थ जीने के तौर-तरीके में एक ऐसा सामंजस्य है, जो गति तो बनाये रखता है, पर विशृंखलता नहीं आने देता। धर्म कोरा अध्यात्म नहीं है, न कोरा पूजा-पाठ, न जप-तप या ध्यान-धारणा ही है, वह समूचा जीवन है, जिसका एक आयाम तो देश-काल जरूर है, पर उसके साथ-साथ एक दूसरा भी आयाम है, अपने आपको लांघकर आगे जाने का भाव और यही वह ऋतु है, ऐसी गति है, जो दूसरी गतियों को निश्चितता देती है। दूसरे शब्दों में धर्म बदलते हुए समाज और व्यक्ति के बीच, परिवर्तनशील प्रकृति और मनुष्य के बीच लयबद्धता को जांचता रहता है, जरूरत पड़ती है तो अपने को पुनः नवपरिभाषित करता है, अपने पुराने स्वरूप को तजकर नया स्वरूप धारण करता है, पर अपनी प्रकृति, अपना स्वभाव कभी नहीं खोता। उसका स्वभाव है, गति का धारण, गति को धारण करने के लिए अपने को सन्तुलित करते रहना। धर्म के इस व्यापक सन्दर्भ में ही मूल्यों की तलाश की बात करने जा रहा हूँ। अब मूल्य पर आता हूँ। भारतीय चिंतन में इसका समकक्ष शब्द है, अर्थ, उसी को और स्पष्ट करने के लिए उसे पुरुषार्थ नाम से भी पुकारा गया है। परन्तु मूल्य और पुरुषार्थ में एक अन्तर है। मूल्य में प्रयोजन का भाव कुछ दबा-दबा रहता है, मान का या तारतम्य का अपेक्षाकृत अधिक का भाव अधिक उभरा रहता है। इसलिए मूल्य परस्पर-विरोधी भी हो सकते हैं, जबकि पुरुषार्थ में क्रमिकता और परस्परता पर अधिक बल है। अकेले काम जीवन का लक्ष्य नहीं, अकेले अर्थ जीवन का लक्ष्य नहीं, अकेले धर्म भी लक्ष्य नहीं और इन तीनों को साधे बिना मोक्ष भी लक्ष्य नहीं, और मोक्ष सध भी जाए तो वह चरम लक्ष्य नहीं, चरम लक्ष्य समस्त चर-अचर प्राणियों में एक अव्यय, एक न चुकने वाला भाव पाना है, जो पाना भी है, होना भी है, होना भी है और इसीलिए वह काम, अर्थ, धर्म या मोक्ष, किसी एक का या चारों का परिहार नहीं संग्रह है और किसी एक या चारों का संग्रह संग्रह के लिए नहीं, उत्सर्ग के लिए है। इस दृष्टि से मूल्य कुछ छोटा पड़ता है, पुरुषार्थ से। मैं जब नये मूल्यों की तलाश की बात करता हूँ तो मूल्य का प्रयोग पुरुषार्थ के अधिक व्यापक और समग्र अर्थ में करना चाहता हूँ। अब तुरन्त यह प्रश्न उठेगा कि धर्म तो स्वयं एक पुरुषार्थ है, धर्म में नये पुरुषार्थ की खोज क्या होगी ? इस प्रश्न का समाधान यह है कि चार या पाँच पुरुषार्थों में गिनाया गया धर्म और प्रयोजनवत्ता या सार्थकता या मूल्यवत्ता के लिए परिचालित करने वाला धर्म ये दोनों अलग-अलग धारणाएँ हैं; एक है व्यावहारिक, दूसरा है पारमार्थिक; एक है साधक, दूसरा है साधन की

योग्यता की जाँच और ऐसी जाँच सतत चलती रहती है, क्योंकि परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं और परिस्थितियों से गुजरने वाला मनुष्य भी बदलता रहता है। जिस धर्म में हम नये मूल्यों या नये जीवन-प्रयोजनों की तलाश की बात करना चाहते हैं, वह धर्म दूसरी कोटि में आता है।

एक बात और अभी रह गयी। भारत के देश-काल में हम इस खोज की प्रक्रिया को जाँच रहे हैं, इसका अर्थ यह नहीं है कि भारत के बाहर इसकी प्रामाणिकता या संगति नहीं है या कम है। बस, इतना है कि भारत के चौखटे में इस जाँच को परखने में कुछ अधिक सुविधा है, भारत के लम्बे इतिहास में इस प्रकार की तलाश की निरन्तर अनवच्छिन्न धारा देखी जा सकती है और इसलिए नयेपन को नापना भी अधिक आसान हो जाता है। एक-दो उदाहरणों से यह बात स्पष्ट होगी। यज्ञसंस्था ने वैदिक युग में मनुष्य और प्राकृतिक शक्तियों के बीच सामंजस्य स्थापित करने में या सामाजिक चेतना या सामाजिक सहभागिता के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी, पर उसकी जब गहरी जाँच हुई तो यज्ञ का कर्मकांड कुछ छोटा पड़ गया और यज्ञभाव की साधना अधिक महत्वपूर्ण हो गयी। यह यज्ञभाव ही उपनिषदों में ब्रह्मभाव हुआ, पर ब्रह्मभाव भी अपने निरपेक्ष और केवल रूप में अपर्याप्त लगा और अवतीर्ण होने वाले नारायण अधिक काम्य या अन्वेषणीय हो गये। नारायण भी मध्ययुग में भक्ति के आगे और भक्ति के कारण भक्त के आगे विवश हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी में और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भक्ति की विवशता राष्ट्रीय उत्थान के प्रयत्न के रूप में पुनः परिभाषित हुई। इस प्रकार पुरुषार्थ में नये शिखर का बोध होता रहा, और यह बोध व्यापक धर्म के क्षेत्र में होता रहा। यहाँ यह भी जोड़ना आवश्यक है कि प्राचीन और मध्ययुग दोनों में चरम मूल्यवत्ता की खोज सभी सम्प्रदायों में (मैं सम्प्रदाय का प्रयोग आज के संकीर्ण और बदनाम अर्थ में नहीं कर रहा हूँ, मैं इसका प्रयोग इसके मूल अर्थ में कर रहा हूँ) धर्म के क्षेत्र में समानांतर रूप से हुई, प्राचीन काल में तीर्थंकर, बोधिसत्व और अवतार ये तीन अवधारणाएँ एक ही उद्देश्य में साधक बनीं, मध्यकाल में सन्त, औलिया, फकीर या सिद्ध की अवस्थिति समान रूप से विश्व-चेतना और आत्म-चेतना के विलय की अवस्थिति के रूप में सर्वमान्य हुई। आधुनिक युग के आरम्भ में भी स्वाधीनता के लिए उत्सर्ग की भावना समान रूप से भिन्न-भिन्न वर्गों में विकसित हुई। इस प्रकार हम स्पष्ट देख सकते हैं कि एक युग का साध्य दूसरे युग में साधन बनता गया है।

यह भी स्पष्ट हो जाता है कि तलाश एक बड़े खुले मैदान में हुई है, जिसमें मनुष्य को घेरने वाली दीवारें नहीं हैं, बस उसका आकाश है और उसके नये-नये रंगों वाले क्षितिज हैं। पश्चिम अर्थात् ब्रिटेन के माध्यम से निर्यातित पश्चिम ने हमारी मूल्य अवधारणा को थोड़ा संकरा बनाने का यत्न किया। एक ओर तो उसने व्यक्ति की निजता की एक अपरिचित और शायद इसीलिए बड़ी मोहक तस्वीर खड़ी की और इस तस्वीर पर सब कुछ न्योछावर करने की आकांक्षा जगायी, दूसरी ओर इसने वर्गसंघर्ष को अधिक रेखांकित करके व्यक्ति के विवेक को एकदम नगण्य बनाने वाली सामाजिक श्रद्धा या कभी-कभी श्रद्धा का रंग चढ़ाया। दोनों अतिरेक आगे-पीछे आये और दोनों राजनीति में उतर गये, इनमें से कोई भी भीतर से बाहर और बाहर से भीतर गतिशील धर्म में नहीं प्रविष्ट हो सका, दोनों हवा में टंगे रह गये। लगा कि वे छा गये, वे भिन गये, पर वस्तुतः वे जड़ता की ही स्थिति लाने में, वैचारिक शून्यता उत्पन्न करने में या तटस्थ निष्क्रियता या कोरी बहसबाजी को बढ़ावा देने में अधिक प्रभावी रहे। थोड़ी-बहुत हलचल जो उन्होंने पैदा की' वह हलचल विस्थापन के रूप में ही अधिक दिखाई पड़ी, सक्रिय और सोद्देश्य सामाजिक गतिशीलता उनसे नहीं सधी।

आश्चर्य की बात यह है कि गांधी, लोहिया और जयप्रकाश जैसे विचारकों के देश में कोई गहरे स्तर पर मूल्यों की तलाश की चिन्ता नहीं हुई। गांधी जी ने आस्तिक सनातनी हिंदू रहते हुए सभी विश्वासों के प्रति न केवल आदर व्यक्त किया, बल्कि भारत के समस्त विश्वासों से समूचे भारत की प्रकृति के अनुरूप जीवन-धर्म का एक घोषणा-पत्र अपनी 'हिन्दू स्वराज्य' पुस्तक में तैयार किया, वह स्वाधीन भारत की गीता, इंजील और कुरान तीनों बन सकती थी, पर वह बिना परीक्षण के ही ताख पर रख दी गयी। लोहिया ने देश के विभाजन के बाद की परिस्थितियों में भारत में समान रूप से सभी वर्गों को मान्य मानवीय मानदण्डों को आधार मानकर सप्तक्रांति की एक रूपरेखा प्रस्तुत की और वह रूपरेखा उन्हीं के नजदीक के लोगों ने गिरवी रख दी। जयप्रकाश तो अपने ही भक्तों के बीच में अजनबी हो गये। इन तीनों विचारकों में एक कमी थी, ये राजनीति से परे भी सोच सकते थे और राजनीति को मूल्यों के पास पहुँचा सकते थे, क्योंकि इनके लिए राजनीति धर्म थी। धर्म के तथाकथित क्षेत्र में भी जो प्रयत्न हुए, वे सुरक्षात्मक रहे, फकीरी ठाठ की धार्मिक परम्परा ने अपना ठाठ ही बदल दिया। चिन्तन के शैक्षिक दावेदारों की स्थिति और भी दयनीय रही, वे आयातित सांचों और परिभाषाओं को फेंटते रहे, सांचे और परिभाषाएँ उठी ही नहीं।

परन्तु इस विस्थापन से अलग कुछ घटित होता रहा और हो रहा है। हाँ, यह अधिकतर भूगर्भवर्ती जलस्रोतों में घटित हुआ, सतह पर इसका प्रभाव भी अभी बहुत संलक्ष्य नहीं हुआ है। मेरा संकेत साहित्य-रचना के क्षेत्र से है। साहित्य में एक गहरी चिन्ता है, जीवन का अर्थ पाने की, इस चिन्ता का उत्स है असंतोष उस सबसे जो उसे अर्थ के रूप में दिए हुए मिले हैं, व्यक्ति का मोक्ष हो या विश्वसत्ता में विसर्जन हो या सामाजिक स्वाधीनता हो या व्यक्ति की स्वतन्त्रता हो इन सबसे असंतोष है, तभी चिन्ता है। कभी-कभी यह असंतोष स्वधर्म से भी हो जाता है यह लिखना निरर्थक है, यह भाव प्रबल हो उठता है। यह चिन्ता अनेक प्रश्नों से जुड़ी है, ये कैसे मूल्य जो मनुष्य को मनुष्य की हत्या, एक पूरे वर्ग से घृणा के नाम पर उस वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति से घृणा के लिए उकसाते हैं, ये कैसे मूल्य जो ईश्वर में सिमटा कर मनुष्य को करुणा की धारा से काट कर अलग कर देते हैं, ये कैसे मूल्य जो आदमी को परिवेश के अधिपति के रूप में स्थापित करते है और उसके अहंकार को आस्फालित करके उसे वेध्य बना देते हैं और ये कैसे मूल्य जो उसे एक जड़ सामाजिक व्यवस्था के आग्रह में जीव को जीव रूप में देखने से विरत करते हैं? कोई कहीं चूक करता है, कोई कहीं दूसरे से पीड़ित होता है, कोई कहीं दूसरे को उत्पीड़ित करता है तो हम भले हैं, अलग-थलग रहें, यह निर्मम और कायर उदासीनता देते हैं।

ये प्रश्न प्रायः अनुत्तरित रहते हैं, पर इन्हें छेड़े रखना भी यदि सम्भव होता है तो इसलिए कि इन प्रश्नों को छेड़ने में धर्म का भाव है। अकेले एक प्रश्न धर्म नहीं बनता। शरदचन्द्र चट्टोपाध्याय ने कहा कि एकनिष्ठ प्रेम सतीत्व के आदर्श से क्या बड़ा नहीं है, प्रेमचन्द ने 'गोदान' में एक प्रश्न छेड़ा क्या होरी का नैतिक मूल्य-बोध अनिवार्य रूप से दुःखप्रद परिणाम नहीं लाता, अज्ञेय ने एक प्रश्न छेड़ा क्या नन्दादेवी निरी वस्तु है, धूमिल ने एक प्रश्न छेड़ा कि क्या जनतन्त्र व्यर्थ है तो अलग-अलग ये सभी प्रश्न धर्म नहीं हैं, पर देशकाल के चौखटे में मनुष्य को गतिशील बनाने वाले धर्म की व्यापक धारणा से ही ये सभी उद्भूत हैं। इन प्रश्नों के छिड़ने का प्रभाव कई स्तरों पर देखा जा सकता है।

व्यक्ति की गरिमा को प्रतिष्ठा मिली है। वह किसी जाति का हो, किसी व्यवसाय में हो,

किसी भी प्रकार के आचार-विचार का हो, वह हेय या उपेक्षणीय नहीं है, सिर्फ इतना ही नहीं, वह सम्मान की अपेक्षा रखता है, इस अवधारणा का विकास हुआ है। इसीलिए प्रत्येक समस्या का समाधान समतल करने वाले बुलडोजर में नहीं ढूंढ़ा जाता। असम या मिजोरम या मणिपुर के असन्तुष्ट तत्त्वों की समस्या का मानवीय समाधान ढूंढ़ने का प्रयत्न इसी उदार भाव से प्रेरित है। इसने प्रादेशिकता को उभारा है, यह सही है पर इसने निराकार राष्ट्रीयता पर प्रश्नचिह्न लगाया है, और यह महत्त्वपूर्ण है, इसने तितिक्षा का भाव पैदा किया है।

दूसरी ओर इन प्रश्नों ने व्यक्ति के उपभोग की आकांक्षा पर अंकुश लगाया है, श्रीमद्-भागवत में एक जगह कहा गया है :

यावद् भ्रियेत उदरं तावत्स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥

आदमी का पेट जितने से भरे, उतना ही उसका स्वत्व है। इससे अधिक जो अपना मानता है, वह चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिए। समृद्धि का असीमित उपभोग पाप है, यह धारणा तीव्रतर हुई है। परन्तु बांटकर खाने के सुख का भाव कुछ उतना प्रबल नहीं हुआ है, प्रबल रहता तो एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा यूनिडो विफल नहीं होता। अभी तक सम्पन्नता नियामक नहीं बनी रहती।

धर्म का एक तीसरा क्षेत्र है, जहाँ एक ओर गहरे मूल्य की चिन्ता दिखाई पड़ती है। वह है जीव-सृष्टि के चक्र में मनुष्य की क्या भूमिका हो, इसे जानने और उसके अनुसार अपने को ढालने का प्रयत्न करने की चिन्ता। उन लोगों द्वारा भी यह प्रयत्न हो रहा है, जो अपने धार्मिक विश्वास के कारण यह मानते रहे हैं कि ईश्वर ने यह पृथ्वी मनुष्य के उपभोग के लिए रची। (हम लोग केवल इस दम्भ में पड़े हुए हैं कि हमारी संस्कृति समस्त जीवन में एक अन्तरव-लम्बिता देखती आयी है।) मनुष्य का बड़प्पन उपभोक्ता होने में या सृष्टि का नियामक होने में नहीं है, यह बात सोची जाने लगी है, क्योंकि मनुष्य के इस प्रकार के अहंकार ने सृष्टि-चक्र को विस्थापित करना शुरू कर दिया है और जीवन के विनाश की सम्भावना उठ खड़ी हुई है।

यह सही है कि मनुष्य में अभी भी अर्पण का भाव बहुत अस्पष्ट है, पर वह इसलिए कि उसकी धार्मिक चेतना से अंधराये दर्पण की तरह मलिन हो गई है, उसमें ठीक-ठीक न मनुष्य, न उसका विश्व प्रतिबिम्ब हो पाता है। मृत्यु के साक्षात्कार ने ही अर्जुन को गीता के उपदेश का अधिकारी बनाया, कदाचित् इसी प्रकार विनाश की सम्भावना के प्रति प्रखर जागरुकता ही इस दर्पण को मांज सके। और आदमी की धार्मिक चेतना इस मूल्य की ओर अभिमुख हो सके कि व्यष्टि समष्टि है, व्यष्टि का प्रत्येक प्रयत्न समष्टि का और समष्टि के लिए प्रयत्न है और जीवन का प्रयोजन सर्वजीवन है, इस सर्व में मनुष्य समाज है, प्राणि जगत् है, वनस्पति जगत् है, पहाड़-नदी-सागर है, ग्रह-नक्षत्र है, पंचमहाभूत है, अनुभव है, अनुभव करने वाला है, अनुभव का विषय है। इस मूल्य की तलाश जितनी ही तेजी से होगी, उतनी ही व्यवस्था का केन्द्रीकरण टूटता जायेगा और आत्म-अनुशासित विकेन्द्रित व्यवस्थाएं जड़ पकड़ती जायेंगी, मनुष्य की स्वाधीनता पर को अधीन बनाने के लिए नहीं, स्व को स्व के अधीन बनाने के लिए प्रेरित होगी, उसका स्वत्व छोटा होगा, पर उसका स्व विस्तृत।

हिन्दुस्तान का समाज सपने में बड़बड़ाने वाला समाज है इसलिए उसका धर्म इस समय सिर्फ एक पैर पर खड़ा है, वह पैर है सत्य, सत्य जो सबका होता है। केवल अपना नहीं होता। दूसरे का सत्य भी उतना ही सच है, जितना अपना। बस केवल यही पैर जमीन पर टिका हुआ है, पर धर्म चल नहीं पा रहा है।

उसे परिचालित करने के लिए बराबर दारुण संकट की अपेक्षा पड़ती रहती है और यह एक शोचनीय स्थिति है। वैसे यह अलग बात है कि दारुण संकट ऐसे बड़बोलेपन वाले समाज में अपरिहार्य रूप से आता ही रहता है, पर ऐसा दारुण-संकट न आ जाय कि प्रयत्न की सम्भावना भी समाप्त हो जाय, इस चिन्ता के कारण जीवन के वरणीय मूल्यों की जाँच और तब आवश्यकता हो तो नये मूल्यों की तलाश शुरू करने की तात्कालिकता और अधिक महत्वपूर्ण हो गयी है। हिन्दुस्तान के बहुभाषी, बहु-विश्वासी और बहु-आचारी समाज और इसकी बहुरंगी प्रकृति में समान रूप से अनुस्यूत कोई भाव नहीं है, इसे पहचाने बिना यह तलाश आगे भटक जायगी। इसलिए ऐसे भाव या समान धर्म को सबसे पहले परिभाषित करना चाहिए, जो सभी वर्गों का अतिक्रमण करने वाला हो, पर सब में हो। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद हम अपने इस भाव को भूल कर मूल्य तलाशते रहे, मूल्य जो हमारे नहीं थे, हमारे लिए नहीं थे, हमारे द्वारा तलाशे हुए मूल्य नहीं थे, और हम नये मूल्यों की तलाश करते-करते अपने को मूल्यहीन पाने की दुरंत स्थिति में आ गये हैं। अभी समय है कि दूसरे छोर से तलाश की प्रक्रिया शुरू करें, यह समझना शुरू करें कि जीवन की निरंतरता और पूर्णता और एकता के लिए उत्सर्ग है और हमारे ये मूल्य ही वरणीय हैं।

(**अस्मिता के लिए** से साभार)

□ □

संस्कृति-सभ्यता और भारतीयता

☐

डा० गोविन्द चन्द्र पाण्डे

एक सुविदित उक्ति है कि संस्कृति की प्रक्रिया एक साथ ही आदर्श को वास्तविक और वास्तविक को आदर्श बनाने की प्रक्रिया है। यद्यपि मूल्य-विश्व कोई बाह्य-प्रदत्त प्राकृतिक वस्तु-जगत् नहीं है, तो भी वह मानवीय चेतना में संकेतित होकर भौतिक व्यवहार के साथ उसके साध्य और नैतिक नियामक के रूप में सम्बद्ध है। यदि भौतिक जीवन की रचना को, श्रम और विश्राम की बाहरी व्यवस्था को, सभ्यता कहा जाय, तो संस्कृति उसके आन्तरिक अर्थानुसन्धान का नाम होगा। सभ्यता मूलतः सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से साधनों का संयोजन है जब कि संस्कृति स्वतन्त्रता का अनुसन्धान है। सभ्यता के अन्तर्गत बाहरी प्रकृति का वशीकार एक तत्त्व है। किन्तु वह तब तक वास्तविक स्वतन्त्रता का अंग नहीं बनता जब तक आन्तरिक मुक्ति की साधना से वह संयुक्त नहीं होता। सभ्यता आन्तरिक साधना की बाहरी सुविधाएँ प्रदान करती है। इन भौतिक सुविधाओं के साथ आध्यात्मिक कृतित्व का स्वरूपतः सम्बन्ध न होते हुए भी मनुष्य के प्रकृति पुरुषात्मक होने के कारण उनमें एक सम्बन्ध अवश्य बन जाता है। यद्यपि सिद्धान्ततः वासना-क्षय कर्म और भोग से न हो कर ज्ञान से ही होता है, तो भी इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सामान्यतया मनुष्य के लिए धर्म और भोग को ऐकान्तिक रूप से छोड़ना सम्भव नहीं है। उनके लिए मर्यादित रूप से कर्म और भोग का जीवन ही वासना-जाल को क्षीण करता हुआ उसके अन्तराल से आत्म-बोध की ओर क्रमशः प्रेरणा देता है। अर्थात् भौतिक जीवन-यात्रा और आध्यात्मिक खोज का सन्धि-क्षेत्र नैतिक सामाजिक जीवन में उपलब्ध होता है जिसे कर्म-क्षेत्र अथवा धर्म-संग्राम का क्षेत्र कहा जा सकता है। नैतिकता का सूत्र ही सभ्यता और संस्कृति को जोड़ता है। वही सामाजिक जीवन की अन्तर्व्यवस्था का सूत्र है। आदर्श खोज भी सामान्यतः जीविका, शिक्षा, अवकाश, सुरक्षा, स्थूल दुःखों का प्रतिकार आदि व्यावहारिक सुविधाओं की अपेक्षा रखती है। स्वयं **भागवत** में कहा है कि '**धर्मादाक्षिप्यतेह्यर्थः।**' यही बात ग्रीन की इस उक्ति में समर्थित होती है कि आदर्श जीवन के लिए मानवीय अधिकार आवश्यक हैं और उनके चरितार्थ होने के लिए एक सुव्यवस्थित राज्य। फलतः यह कहा जा सकता है कि नैतिकता के द्वारा सभ्यता और संस्कृति एक दूसरे के उपकारक होते हैं; यदि सभ्यता का विकास नैतिकता की ओर उपेक्षा उत्पन्न कर दे तो केवल वह सभ्यता संस्कृति की विपक्षी बन जायेगी अपितु स्वयं उसका अन्तःसूत्र छिन्न हो जायेगा। '**धर्मो रक्षति रक्षितः।**' इसी प्रकार से यदि आध्यात्मिक संस्कृति ज्ञान की अनधिकार चर्चा से कर्म-जीवन में अनास्था उत्पन्न कर दे तो वह स्वयं अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारने की स्थिति पैदा कर देगी। जैसे व्यावहारिक स्तर पर क्रियात्मक प्रकृति-तन्त्र के ऊपर पौरुष-बोध की प्रतिष्ठा उपलब्ध होती है, ऐसे ही ऐतिहासिक स्तर पर सामाजिक सभ्यता के ऊपर आध्यात्मिक संस्कृति को प्रतिष्ठा मिलती है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि संस्कृति का उत्कर्षापकर्ष सभ्यता के उत्कर्षापकर्ष पर

निर्भर करता है। न इसका यह अर्थ है कि संस्कृति का अन्तरंग रूप सभ्यता के बहिरंग रूप पर निर्भर करता है। इसका इतना ही अर्थ है कि संस्कृति की सुरक्षा और विस्तार सभ्यता की अवस्था पर निर्भर करते हैं।

संस्कृति की देश-काल में वास्तविक सीमाएँ उसके यथावत् सम्प्रेषण की ही सीमाएँ हैं। इसलिए संस्कृति के क्षेत्र और सीमाओं का निर्धारण मूलतः भौगोलिक अथवा जातीय न होकर भाषा एवं अन्य सांकेतिक विधाओं के प्रचलन से ही होता है। संस्कृति की पहचान इस बात से नहीं होती कि वह किसी देश-काल में प्रदत्त किसी मानव समुदाय का सम्बन्धी धर्म है और उसके विस्तार से मर्यादित है बल्कि संस्कृति से ही समुदाय की पहचान होती है। न संस्कृति समाज का कोई आगन्तुक धर्म है कि उसके बदलते रहने पर भी समाज वही बना रह सके। संस्कृति के द्वारा ही समाज परिभाषित होता है जैसे कि मनुष्य की वास्तविक पहचान इसी बात से होती है कि वह किन आदर्शों को चरितार्थ करने में प्रयत्नशील होता है। यद्यपि सामाजिक व्यवहार का परिचय ज्येष्ठ प्रमाण प्रत्यक्ष से होता है, तो भी शब्द प्रमाण के अनुग्रह के बिना उसका अर्थ नहीं समझा जा सकता और न उसकी कोई व्याख्या ही सम्भव है। और यह शब्द व्यापार एक सुनिश्चित सांकेतिक विश्व के अन्दर ही सम्भव है।

अब तक के विवेचन के कुछ निष्कर्षों को यहाँ संक्षेप में दुहरा लेना आगे के लिए अनुपयोगी न होगा। स्वातन्त्र्यमूलक होने के कारण संस्कृति विज्ञान का विषय नहीं है—सुतरां समाज-विज्ञान का भी नहीं। सांकेतिक अर्थव्यवस्था के रूप में संस्कृति एक सामाजिक परम्परा का रूप धारण करती है और उत्कर्ष की अभीप्सा के रूप में उसकी प्रेरणा विकासात्मक है। इन दोनों ही कारणों से उसमें ऐतिहासिकता अन्तर्निहित है किन्तु यह ऐतिहासिकता मात्र सभ्यता की बहिरंग कारण-कार्य-शृङ्खला नहीं है, बल्कि मुख्यतः अन्तरंग साधना की द्वन्द्वात्मक क्रमिकता है। संस्कृति में इस प्रकार एक द्वैत है। काल में घटित और विघटित ऐतिहासिक संरचनाएँ उसका बाहरी कलेवर है। उसमें अभिव्यक्त अकालिक मूल्यों की चेतना उसका आन्तरिक पक्ष अथवा स्वरूप है। उसका बाह्य पक्ष देश-काल-विशिष्ट सामाजिक परम्पराओं में प्रत्यक्ष किया जा सकता है, अथवा ऐतिहासिक साक्ष्यों से उसका अनुमान किया जा सकता है। किन्तु आन्तरिक पक्ष इस प्रत्यक्ष अथवा अनुमित परम्परा की सांकेतिकता पर मनन के द्वारा ही उपलब्ध हो सकता है।

सार्थक जीवन-विधा के आदर्श नियामक के रूप में संस्कृति को लेने पर उसका समानान्तर प्राचीन भारतीय शब्द 'धर्म', 'सनातन धर्म' अथवा 'आर्यधर्म' है। धर्म सनातन और सार्वभौम होते हुए भी देश, काल, जाति, पात्र एवं अवस्था के अनुसार व्यवस्थित होता है। प्राकृतिक प्रवृत्ति मात्र से धर्म नहीं बनता। धर्म एक मर्यादा जताता है जो विवेक से ही पहचानी जाती है। विवेक से मर्यादित जीवन ही पुरुष को प्रकृति की दासता से मुक्त करता है। इस मुक्ति का अनुसन्धान पुरुष का परम अर्थ अथवा साध्य है। धर्म इस प्रकार सम्पूर्ण जीवन की साध्य-साधना-व्यवस्था है जो समाज को मर्यादित करती है और जिसके अन्तराल में योग या आध्यात्मिक साधना निहित है। प्रवुद्ध स्वार्थ से संयोजित अर्थ और काम का जीवन भले ही वन्यता और ग्राम्यता से उठ कर नागरिक पदवी में पदार्पण करे, किन्तु उतने मात्र से ही उसे आर्य संस्कृति के अन्तर्गत स्थान नहीं मिल सकता। विवेकमूलक नैतिकता से मर्यादित होने पर ही जीवन धर्म अथवा आदर्शोन्मुख संस्कृति में उन्नति और मुक्ति के पथ पर अग्रसर होता है।

इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट के परिहार में पशु मात्र की प्रवृत्ति देखी जाती है। और

इस सन्दर्भ में सहज अथवा अर्जित संस्कारों के द्वारा साध्य-साधन-सम्बन्ध का न्यूनाधिक ज्ञान भी उसमें लक्षित होता है। इस प्रकार का जीवन मनुष्यों में बुद्धि की शक्ति से अनेक-गुणित और परिमार्जित रूप में देखा जा सकता है। स्वार्थ-बुद्धि से प्रेरित, अर्थ-काम-परायण नीति से संचालित, कर्म और भोग की व्यवस्था को संस्कृति तो क्या प्रकृति भी नहीं कहा जा सकता। प्रकृति में अपनी निजी व्यवस्था होती है जिसका पशु अतिक्रमण नहीं करते। भोग-प्रधान मानवीय व्यवस्थाओं में किसी प्रकार की सहज मर्यादाएँ नहीं रहती हैं, बल्कि राजसिक-तामसिक बुद्धि के प्रभाव से उनमें आन्तरिकता का विकास अज्ञात नहीं है। उदाहरण के लिए, नात्सी व्यवस्था को क्या कहा जायेगा? वस्तुतः जो बुद्धि मनुष्य को पशु से पृथक् करती है वह मात्र तर्क-बुद्धि नहीं है। तर्क-बुद्धि साध्य का ज्ञान नहीं देती बल्कि इष्ट साधन मात्र का देती है। मनुष्य की विशेषता उसकी विवेक-बुद्धि से है जो राग-द्वेष का आश्रय लिये बिना साध्य का परिचय देती है। मनुष्य का कर्त्तव्य भी उसे पशु से इस बात में वस्तुतः अलग करता है कि उसमें स्वातन्त्र्य है, न कि मात्र इस बात से कि उसमें दक्षता है। मनुष्य की तर्क-बुद्धि उसे साधनों का ज्ञान देती है, उसकी कार्यदक्षता उसे इन साधनों को गढ़ने की योग्यता देती है। इस प्रकार का बुद्धिमत्त्व और कृतिमत्त्व मनुष्य को भोग और ऐश्वर्य प्रदान करता है किन्तु वास्तविक पुरुषार्थ तक नहीं पहुँचता। दूसरी ओर बुद्धिगत विवेक और कर्तृत्वगत स्वातन्त्र्य मनुष्य को प्रकृति से अतीत अपने स्वरूप का आभास देते हैं। भोग के अनुसन्धान में मनुष्य अपने से भिन्न और निचले स्तर के अर्थ खोजता रहता है और यह अनुसन्धान ज्ञान और कर्म, दोनों ही शक्तियों को प्रकृति के अनुकूल बना देने से, प्रकृति की संरचना को प्रतिबिम्बित करने से एवं उसका अनुकरण करने से ही सम्भव होता है। किन्तु प्रकृति के उपयोग की यह शक्ति मनुष्य की प्राकृतिक दासता को और बढ़ा देती है। **भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः।** इसके विपरीत विवेक-सम्मत अनुसन्धान से पुरुष स्वयं ही अर्थ होता है और इस आत्मोन्मुख साधना में प्रकृति को पुरुष के अनुकूल ढालने की आवश्यकता होती है। पुरुष के अनुकूल प्रकृति का संस्कार, उसका विशोधन अथवा उदात्तीकरण, अन्ततः उसका वशीकरण अथवा अतिक्रमण, इसी को पुरुषार्थ-साधना कहना होगा। कम से कम, कुछ ऐसी ही व्याख्या पुरानी परम्परा में निगूढ़ है। **अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्।**"

संस्कृति अथवा धर्म की भारतीय अवधारणा उसे कालानुसार व्यक्त किन्तु परमार्थतः सनातन साध्य एवं साधन रूप मानती है। इसीलिए भारतीय परम्परा में नैतिक और आध्यात्मिक साधना संस्कृति की प्राणभूत रही है। इस साधना का मार्ग स्वधर्म के पालन से आरम्भ होकर चरम सत्य के साक्षात्कार और जीवन्-मुक्ति तक विस्तृत है। साध्य-साधन-ज्ञान की यह परम्परा ही मूल भारतीय संस्कृति है। **एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।**

किन्तु यह भी तो कहा गया है : **सकालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप।** तब से और भी समय बीत गया। अब क्या यह आपत्ति युक्त नहीं है कि इस प्रकार की परम्परा या तो अब निर्जीव है, या सम्भवतः अत्यन्त अल्पसंख्यक लोगों में सीमित हो? किन्तु यह नैतिक और आध्यात्मिक परम्परा निर्जीव नहीं है इसका प्रमाण तो इस परम्परा की वर्तमान युग में सर्जनशीलता है। दयानन्द और रामकृष्ण परमहंस से महात्मा गान्धी और श्रीअरविन्द तक जितनी महान् विभूतियों ने अपने जन्म और कर्म से वर्तमान युग को शिक्षा-दीक्षा प्रदान की है, उसे आश्चर्यजनक ही कहा जा सकता है। अतीत युगों में, राजनीतिक क्रान्तियों और सामाजिक उथल-पुथल की अनिश्चयपूर्ण सदियों में, अथवा व्यवस्थाओं की बढ़ती हुई जड़ता की सदियों में, सदा ही सन्तों और महात्माओं

की लीलाधारा निरन्तर बहती रही है और अभी भी उसे सूखी नहीं कहा जा सकता। परम्परा की ग्लानि की स्थिति अनेक बार उत्पन्न हुई किन्तु प्रत्येक नयी चुनौती के युग में ज्ञानधारा का एक नया आविर्भाव हुआ और **सम्भवामि युगे युगे** में व्यक्त आश्वासन के साक्षी के रूप में इतिहास से जिरह की जा सकती है। और न सन्तों और महात्माओं को कभी भी जन-जीवन से अलग एक अल्पसंख्यक समुदाय कहा जा सकता है। जिस साधक-मण्डली में साधन-परम्परा संरक्षित रही है, वह कुछ थोड़े से लोगों की बात नहीं है। यह समाज के सभी वर्गों में पायी जा सकती है। संख्या की बात भी वास्तव में महत्त्वपूर्ण नहीं है। उदाहरण के लिए शास्त्रीय परम्परा में वाग्गेयकार अल्पसंख्यक होते हुए भी न लोक-संगीत की व्यापकता अस्वीकार्य हो सकती है और न यह कहा जा सकता है कि संगीत की शास्त्रीय और लोक परम्पराओं में निश्चित सम्बन्ध नहीं है। संस्कृति के सभी क्षेत्रों में लोक-जीवन, प्रतिभा और आलोचनात्मक प्रज्ञा की शास्त्रीय परम्परा, इन तीनों में विविध सम्बन्ध प्रत्याख्येय नहीं हैं। यही स्थिति नैतिक और आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में है। आदर्श को अपने जीवन में चरितार्थ करने वाले साधक विरल होते हैं, किन्तु साधना के प्रति औत्सुक्य और सिद्धों के प्रति सम्मान बहुतों में पाया जाता है।

भारतीय संस्कृति को धर्मव्यवस्था, आध्यात्मविद्या और योग के द्वारा परिभाषित करने का यह अर्थ नहीं है कि भारत में अधिकांश जनता वस्तुतः आध्यात्मिक है अथवा रही थी। यूनानी सभ्यता को बुद्धि-प्रधान अथवा आधुनिक सभ्यता को वैज्ञानिक कहने का यह अर्थ नहीं होता कि सब यूनानी अथवा आधुनिक व्यक्ति बौद्धिक अथवा वैज्ञानिक योग्यता से विशेषित किये जा सकते हैं। वस्तुतः सांस्कृतिक समुदायों के लिए प्रयुक्त इन विशेषणों की सार्थकता उनके सामान्य आदर्शों के सन्दर्भ में होती है न कि उन समुदायों के सदस्यों की प्रातिस्विक उपलब्धि के सन्दर्भ में। यूनानी संस्कृति में सामान्यतः स्वीकृत जीवन का आदर्श उसके मनीषियों के विचारो में निरूपित मिलता है और उस आदर्श में **थेओरिया** प्रधान है। ऐसे ही भाग्य-विपर्यय में उनके लिए ज्ञान एवं धैर्य आश्रयणीय थे, न कि श्रद्धा-भक्ति। किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं होता कि अधिकांश यूनानी व्यक्ति ज्ञानी अथवा जिज्ञासु थे। तो भी उनके समाज में बौद्धिक जिज्ञासा और ज्ञान सर्वोत्तम मूल्य माने जाते थे। जो स्थान बौद्धिक ज्ञान का यूनानी संस्कृति में था अथवा विज्ञान का आधुनिक सभ्यता में है, वही भारतीय परम्परा में आत्म-ज्ञान का रहा है। आधारभूत ज्ञान के भेद से ही इन परम्पराओं में मानव-धर्म की कल्पना में भी अन्तर आ जाता है।

किसी संस्कृति को बौद्धिकता, वैज्ञानिकता अथवा आध्यात्मिकता के द्वारा परिभाषित करने के विरोध में आपत्ति उठायी जा सकती है। यह कहा जा सकता है कि ये गुण सभी संस्कृतियों में पाये जा सकते हैं और प्रायः मिले-जुले होते हैं। संस्कृतियाँ भी एकरस नहीं होतीं। न उनकी आन्तरिक अन्विति सर्वथा समंजस होती है। उनमें भिन्न दृष्टियों के समुदाय और परम्पराएँ संगृहीत होती हैं। इन असरूप अवयवों से संस्कृति रूप अवयवी तक पहुँचने में कल्पना का आश्रय अनिवार्य है। इस कल्पना में संस्कृति के आन्तरिक भेदों की ओर आँख बन्द कर उसके अन्य संस्कृतियों से भेद अतिरंजित कर दिये जाते हैं। यह कहना शायद ठीक होगा कि एक ही मानव जाति के देश-काल में विभक्त इतिहास को निरूपणात्मक सुविधा के लिए उसका नाना संस्कृतियों में विभाजन किया जाता है।

तथ्यमूलक होते हुए भी यह आपत्ति संस्कृति के स्वरूप को ठीक से अवधारित नहीं करती। यह निर्विवाद है कि मानव-जाति की एकता भौतिक है और उसके विभेद आरोपित। मानव संस्कृति की सार्वभौमिकता भी इसीलिए एक आदर्श सत्य है। किन्तु यह सार्वभौमिकता

संस्कृति की एकरसता नहीं है। आदर्श एकता यथार्थगत भेदों के वास्तविक एकीकरण से प्राप्त न होकर, उन भेदों में व्याप्त एक अनन्त साम्य के दर्शन से चेतना में व्यक्त होती है। इसी प्रकार ऐतिहासिक संस्कृतियों के विभाजन मानव संस्कृति की आदर्श एकता से पूर्णतया समंजस है। इसीलिए संस्कृतियाँ जहाँ एक ओर अपने आदर्शों को सार्वभौम मानती हैं, दूसरी ओर वे अपनी सत्ता को एक विशिष्ट समाज अथवा जाति में आधारित करती हैं। सभी ऐतिहासिक संस्कृतियों में आदर्श और यथार्थ की अविश्लब्ध साझेदारी मिलती है। बल्कि यह कहना चाहिए कि उनमें एक आवश्यक अन्तर्द्वन्द्व रहता है। इसीलिए किसी भी संस्कृति का आदर्शपरक निरूपण उसके आधारभूत ऐतिहासिक समाज के यथार्थ का अविकल निरूपण नहीं हो सकता। दूसरी ओर आदर्श और यथार्थ को जोड़ने की नीति सभी संस्कृतियों का आवश्यक अंग होती है। इस दृष्टि से यथार्थ का सामान्य विवेचन भी उनके आदर्श में अन्तर्भूत होता है।

यद्यपि यह निःसन्देह है कि भारतीय संस्कृति में एक सार्वभौमिकता का भाव अन्तर्निहित है, यह उतना ही निर्विवाद है कि भारतीय संस्कृति की ऐतिहासिक परम्परा में उसकी अन्तर्निहित सार्वभौमिकता अधूरे रूप में ही चरितार्थ हुई है। इसीलिए भारतीय संस्कृति के ऐतिहासिक रूप उसके पूर्ण प्रतिनिधि नहीं माने जा सकते। किन्तु यथार्थ की इस असरूपता से संस्कृति के आदर्श असत्य नहीं हो जाते हैं। वस्तुतः ये कठिनाइयाँ सभी संस्कृतियों में समान रूप से मिलती हैं।

मैं यह मान कर चल रहा हूँ कि इस सन्दर्भ में संस्कृति से भारतीयता परिभाषित है, न कि भारतीयता से संस्कृति। इसीलिए प्राचीन परम्परा में भारतीय धर्म की चर्चा नहीं मिलती, चर्चा मिलती है धर्म अथवा आर्यधर्म की। धर्म आदर्श नियम है न कि रूढ़ि जिसका पता तत्तत्-जन-समुदाय के प्रचलन से लगाया जाय। धर्म का मूल मानव प्रकृति की दैवी सम्पत्ति है, मात्र उच्चावच जनाचार नहीं। भारतवासी जन-समुदायों का प्रचलित शील और रुचि भारतीय संस्कृति नहीं है बल्कि उनकी शिष्ट चेतना के द्वारा स्वीकृत मर्यादाएँ और आदर्श ही को उनकी संस्कृति कहना चाहिए जिसका पता प्रत्यक्ष से नहीं लग सकता। कुल, देश आदि जन्ममूलक परम्परा और प्राकृत समुदाचार एक सन्दर्भ प्रस्तुत करते हैं जिसे शिक्षा-मूलक परम्परा मर्यादित करती है। प्रवृत्ति और समुदाचार नियम्य तत्त्व हैं, ज्ञान नियामक है।

अवश्य ही जाति, जनपद आदि के धर्म की सूचना मिलती है और यह स्वीकृत है कि देश, काल, जाति, अवस्था आदि से धर्म अवच्छिन्न होता है। वस्तुतः जिन-जिन उपाधियों से मानवीय कर्त्तव्य अवच्छिन्न होता है, वे सब धर्म में भी विशेषता निरूपित करती हैं। किन्तु इससे धर्म का मुख्य रूप तिरस्कृत नहीं होता। प्राचीन परम्परा में प्रदेशवासिता से निरूपित जनपद धर्म का महत्त्व राजा के द्वारा व्यवहार-निर्णय में था न कि आदर्श मानव-जीवन के सन्दर्भ में। देशाचार से अधिक महत्त्व सदाचार का था। यह सही है कि सज्जन या प्रामाणिक व्यक्ति के निर्देश के लिए स्मृतियों में भौगोलिक मर्यादाओं का उल्लेख किया गया है। किन्तु वह एक लौकिक प्रचलन मात्र का निर्देश है, और उसमें भी मनु ने 'पारम्पर्यक्रमागतः' यह आचार का विशेषण दिया है। स्पष्ट ही देशमात्र से सज्जन या आर्य का स्वरूप लक्षित नहीं होता। आचार देशवासिता के नाते आर्य-धर्म नहीं है। स्मृतिकारों को जहाँ आर्य-सम्मत व्यवस्था का प्रचलन दिखाई दिया, उस देश का नाम उन्होंने आर्यावर्त रख दिया।

आर्य शब्द यदि मूलतः देशवाची नहीं है तो जातिवाची भी नहीं है। यह सही है कि आधुनिक विद्वानों में प्रचलित मान्यता के अनुसार आर्य शब्द भारोपीय भाषाओं की मूलभूत भाषा का प्रयोग करने वाली जातिविशेष का वाचक था। किन्तु भारतीय परम्परा में इस प्रकार का अर्थ प्रमाणित नहीं होता। अर्थशास्त्र में 'आर्य' दास का प्रतियोगी है। आर्य शब्द का आध्यात्मिकीकृत रूप बौद्ध साहित्य में मिलता है जहां आर्य पृथग्जन का प्रतियोगी है। अमर कोश में आर्य शब्द सभ्य, सज्जन का पर्यायवाची है। पुराणों में उपलब्ध आर्य और म्लेच्छ का भेद प्राकृतिक जातियों का भेद नहीं है बल्कि सभ्यताओं का भेद है जो कि समाज व्यवस्था के अनुसार किया गया है।

इसी व्यवस्थामूलक भेद को एक भौगोलिक आधार देने का यत्न भी पुराणों में मिलता है। वहाँ एक मध्यवर्ती देश पुण्यभूमि या कर्मभूमि के रूप में माना गया है और उसके चारों ओर प्रत्यन्तभूमि को म्लेच्छ भूमि कहा गया है। बौद्ध साहित्य में भी मध्य देश और प्रत्यन्त का सदृश भेद किया गया है। मध्यवर्ती देश का नाम और सीमाएँ ऐतिहासिक क्रम में बदलती रही हैं। पुराणों में सामान्यतया भारतवर्ष अथवा कुमारी द्वीप को ही चातुर्वर्ण्य एवं चतुर्युगी से लक्षित किया गया है। वही कर्मभूमि है जहाँ स्वर्ग और अपवर्ग के लिए संकल्पपूर्वक साधना सम्भव है। "पृथिव्यां भारतं वर्षं कर्मभूमिरुदाहृता।"

सांस्कृतिक भूगोल का इस प्रकार का विवरण स्वदेशानुशंसा से प्रेरित अर्थवाद ही माना जाना चाहिए। यह बात अलबत्ता सही है कि भारतीय समाज और सभ्यता के अन्य सभ्यताओं से विभाजन को एक भौगोलिक रूप दिया जा सकता है किन्तु ये भौगोलिक सीमाएँ ऐतिहासिक काल में बदलती रही हैं। संस्कृति की प्रक्रियाओं और परिवर्तनों के द्वारा ही इन सीमाओं को समझा जा सकता है। पहले कहा जा चुका है कि सांस्कृतिक साधना द्विस्तरीय होती है। एक स्तर अव्यवहारिक पारमार्थिक मूल्यों का, दूसरा नैतिक-सामाजिक मूल्यों का। व्यावहारिक ऐतिहासिक भूमि में संस्कृति एक भौतिक सभ्यता की संरचना में कढ़ी होती है। और परस्पर-सम्बद्ध संस्कृति और सभ्यता की यह योजना अपनी एक विशिष्ट भाषा की सांकेतिक व्यवस्था के द्वारा अभिव्यक्त होती है।

इन सामान्य सूत्रों को लागू करने पर भारतीय संस्कृति के चार लक्षण निर्धारित किये जा सकते हैं। पहला है आध्यात्मिक स्तर पर आध्यात्मविद्या एवं योग का। दूसरा है नैतिक-व्यावहारिक स्तर पर उस व्यवस्था का जिसे परम्परागत अर्थ में धर्म कहा जाता है। तीसरा है संकेत-व्यवस्था का जिसमें मुख्यतः संस्कृत भाषा, वाङ्मय और प्रतीकात्मक कला को रखा जा सकता है। चौथा लक्षण इनकी अनुबन्धी एक ऐसी भौतिक सभ्यता के रूप में है जिसमें अरण्यवास से नगर-संवास तक की अवस्थाएँ चार युगों के समान एकत्र पायी जा सकती हैं। न सिर्फ भारतीय संस्कृति के इन चार पक्षों में अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं बल्कि इन पर्वों की समायोजना में भी विलक्षणता है। यद्यपि पारलौकिक जीवन का स्थान सभी संस्कृतियों में होता है, उसका प्राधान्य दो ही परम्पराओं में मिलता है—सामी और भारतीय। किन्तु पारलौकिक के सामी और भारतीय रूपों में बहुत अन्तर है। सामी धर्मनिष्ठा न सिर्फ अपने ही सत्य को स्वीकार करती है बल्कि विश्व भर को उसे मनवाने के लिए सन्नद्ध रहती है। उसके लिए प्रमाण है केवल ईश्वर-वचन जिसकी प्राप्ति होती है एक निश्चित ऐतिहासिक पुरुष के द्वारा। ऐतिहासिकता तो सामी धार्मिक जीवन की अवधारणा के साथ-साथ ओत-प्रोत है। भारतीय धार्मिक जीवन में इस तरह के तत्त्व प्रधान नहीं हैं।

यहाँ प्राधान्य है साक्षात्कारात्मक ज्ञान का, योग-साधना का, आत्मज्ञान के आदर्श का। यद्यपि निवृत्ति-मार्गी आदर्श ईसाई धर्म में मिलता है, उसकी मूल प्रेरणा सम्भवतः अशोक के द्वारा प्रचारित बौद्ध धर्म के रूप में भारतीय थी। निष्ठा की कट्टरता के साथ भारत में सभी को अपने स्वीकृत सत्य का अनुसरण करने की स्वाधीनता रही है। धार्मिक क्षेत्र में इस प्रकार की उदारता भारतीय संस्कृति की एक सुविदित विशेषता है। इस उदारता का मूल संशयवाद या व्यक्तिवाद नहीं था। स्वानुभूति को परम प्रमाण मानने से और अधिकार भेद स्वीकार करने से ही यह उदारता पैदा होती है। सत्य एक होते हुए भी अनन्त है और उसकी उपलब्धि निजी रूप से अपनी योग्यता के अनुसार ही हो सकती है। **रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।**

आत्मज्ञान के अनुबन्धी नैतिक क्षेत्र में अहिंसा को सर्वोपरि धर्म मानना भी भारतीय परम्परा की सर्वविदित विशेषता है। इसके मूल में जीव की व्यापकता का सिद्धान्त है, जिसका अपलापन कर निवृत्ति-मार्ग में कभी भी प्रवेश सम्भव नहीं माना जाता था। वर्णाश्रम व्यवस्था की विलक्षणता सुविदित है और वह भारतीय समाज के सभी विदेशी और आधुनिक परीक्षकों के लिए एक कौतूहल, रहस्य और विरोध का विषय बना रहा है। यद्यपि आत्मगुण और कर्तव्य-भावना के रूप में धर्म आध्यात्मिकता का नित्य अनुबन्ध है, उसकी व्यवस्थात्मक परिभाषा युग-सापेक्ष होने से अनिवार्यतया ऐतिहासिक होती है। यथार्थ में सामाजिक व्यवस्था के विस्तर भौतिक साधनों और राजनीति के साथ बँधे रहते हैं।

भौतिक सभ्यता के पक्ष की मुख्य विशेषता यही है कि उसमें ऐतिहासिक काल में क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हुए हैं बल्कि उसमें एक आश्चर्यजनक अविच्छिन्नता है जो कि उसके ऐतिहासिक युग-विभाजन को सर्वथा सापेक्ष बना देती है। भौतिक अवस्था और राजनीतिक कानूनी व्यवस्था का इतिहास वर्तमान युग में विशेष रूप से खोज का विषय है।

सांकेतिक व्यवस्था के स्तर पर संस्कृत-भाषा का प्राधान्य निर्विवाद है। बोलचाल की भाषा न रहने पर भी संस्कृत शिक्षा की भाषा रही है। आधुनिक भाषाओं पर उसकी अमिट छाप है और उसको वह एक व्यापक अन्तःसूत्र के समान जोड़े हुए है। संस्कृति की यह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष परम्परा समस्त भारतीय संस्कृति में एक चिरन्तन सुनहरे धागे के समान पिरोयी हुई है। सांकेतिकता के अन्य स्तर पर साहित्यिक और कलात्मक प्रतीक विधान है जो कि संस्कृति के मार्गी और देशी पक्षों का समायोजन करता है और आध्यात्मिक, नैतिक अनुभूतियों को मूर्त रूप में सम्प्रेषित करता है। यह प्रतीक-विधान इन्द्रियगोचर वस्तुओं को एक अतीन्द्रिय सत्य के लिए पारदर्शी बना देता है।

अनिवार्यतया ऐतिहासिक होते हुए भी भारतीय संस्कृति में ऐतिहासिकता का बोध कुछ अन्य संस्कृतियों की तुलना में प्रमुख नहीं है। यहूदी, ईसाई अथवा आधुनिक पश्चिमी परम्पराओं में वास्तविक सार्वजनिक इतिहास उनके आत्मबोध में केन्द्रीय स्थान रखता है। उनमें आदर्श जीवन की कल्पना ऐतिहासिक काल में कर्म जीवन की है जिनके साथ शहादत और संघर्ष और जातीय भविष्य की चिन्ता जुड़ी हुई है। उनके लिए इतिहास अनिवर्तनीय क्रान्तियों से गुजरता हुआ एक सुनहरे भविष्य की ओर बढ़ता है जिसमें आदर्श न्याय प्रतिष्ठित किया जा सकेगा। भारतीय चेतना में आदर्श जीवन एक प्रातिस्विक, प्रत्यात्मनियत आन्तरिक साधना है जिसकी गति पुनरावर्ती और चक्राकार होती है। सामूहिक कर्म और जातीय नियति इसमें उपेक्षित हैं।

प्राकृतिक देशकाल में विस्तार और विजय के स्थान पर अन्तर्मुख निवृत्ति के द्वारा उनके अतिक्रमण के लक्ष्य ने भारतीय चेतना को अधिक आकृष्ट किया है। अलौकिक अर्थ के अनुसन्धान एवं प्रतीकात्मक अर्थ के प्राधान्य ने भारतीय संस्कृति के आत्मबोध को ऐतिहासिक स्मृति अथवा खोज के स्थान पर पौराणिक कल्पना में व्यक्त होने की ओर प्रेरित किया है। फलतः इस सांस्कृतिक आत्म-बोध में एक सनातनता का आभास मिलता है न कि आधुनिक अर्थ में ऐतिहासिकता का।

मूल पौराणिक परम्परा में प्रतीकात्मक आख्यानों के साथ इतिवृत्तात्मक इतिहास की भी एक परम्परा समन्वित थी किन्तु कालान्तर में वह क्षीण हो गयी एवं गुप्तोत्तर काल में पौराणिक परम्परा सर्वथा अनैतिहासिक बन गयी। यद्यपि नये राजवंशों के इतिहास लिखे जाते रहे पुराने इतिहास का ज्ञान क्रमशः लुप्त होता गया। यही नहीं, मध्य काल में प्रयत्न से रक्षित पुरानी सांस्कृतिक परम्परा का अधिकांश विनाश के गर्त में खो गया। उदाहरण के लिए तुर्की आक्रमण-कारियों के हाथों नालन्दा का महाविहार और उसकी संचित पुस्तक-राशि भस्मसात् हो गयी। 14वीं शताब्दी तक उत्तर भारत अतीत विषयक कितने गहरे अन्धकार में डूब गया था, इसका एक उदाहरण पर्याप्त होगा। फिरोज शाह तुगलक ने अशोक के दो स्तम्भ अन्य स्थलों से दिल्ली उठवाये थे। उस अवसर पर निमन्त्रित विद्वान् ब्राह्मण इन स्तम्भों के अभिलेख बिल्कुल ही नहीं पढ़ पाये थे। 19वीं शताब्दी तक यह इतिहास का अज्ञान पुरानी संस्कृति के व्यापक अज्ञान का एक अंश मात्र था।

पांडित्य की परम्परा में जितनी सूक्ष्मता थी उतनी ही तब संकीर्णता थी। म० म० सुधाकर द्विवेदी ने अपने बाल्यकाल के एक अनुभव का उल्लेख किया है जिसमें उन्होंने काशी में महाभाष्य के एक ऐसे विद्वान् को देखा जो पृष्ठों पर लिखी हुई संख्याएँ ही नहीं पढ़ सकते थे। ज्ञान की यह दुरवस्था मध्यकाल की सामाजिक और राजनीतिक घटनाओं के कारण थी। मध्य-काल में विज्ञान की परम्परा भास्कराचार्य के बाद अवनतिशील थी। बौद्ध धर्म के भारत में लुप्त होने के कारण दर्शन की परम्परा में नास्तिकता और बौद्धिकता का विरोधी स्वर तिरोहित हो गया और वैचारिक प्रवृत्ति स्कोलेस्टिक या मात्र लक्षणवादी बनती गयी। सामाजिक विभाजन के कारण ज्ञान का व्यवहार से सम्बन्ध छिन्न हो गया और शासन में सैनिक एवं सामन्ती तत्त्वों की प्रधानता के कारण समाज में ज्ञान का स्थान ही गिर गया।

(**भारतीय परम्परा के मूल स्वर** से साभार)

□ □

देश के लिए जीना सीखो

□

बाबा आमटे

(बाबा आमटे का समर्पित जीवन परिचय की अपेक्षा नहीं रखता। आज की विषम परिस्थिति में निष्काम सेवा के जो थोड़े से दीपक सुरक्षित हैं, उनमें बाबा आमटे अग्रगण्य हैं। विवेकानन्द के समान उनकी भी युवा-शक्ति में अटूट आस्था है। प्रस्तुत लेख उनके चिन्तन का एक नमूना है।)

चारों ओर घटनाओं को देखते हुए तरुणाई के हिस्से में कौन-सी भूमिका आयेगी ?

पारदर्शक कांच के पीछे से देखने की ? कमल-दल के समान अलिप्त रहने की ?

उस पार का सब कुछ दिखाई देता है। वहाँ भाव-भावनाओं का जयघोष चल रहा है। पर इस पार से देखने वाली तरुणाई उसे अपना नहीं सकती। प्रतिक्षण उत्फुल्ल होकर भी निर्माण, आनन्द, संघर्ष आदि भावनाओं से युवा-शक्ति समरस नहीं हो पाती। उसकी नजर जागरूक होती है। बारीकी से अवलोकन करती है, फिर कांच के परदे के पीछे से देखने के कारण उसे संभ्रम हो जाता है। गड़बड़ी पैदा हो जाती है। कांच की आड के कारण उसे खुली हवा नहीं मिलती, इसलिए उसमें निराशा भरी अकेलेपन की रिक्तता की घुटन रहती है। वह बौखला जाती है। वह इस बाधा को तोड़कर भागना चाहती है। उसका आवेश उफनता है। अपने ही स्वप्नों को चीरता हुआ वह उन्हें धक्के मारता रहता है। कांच की खिड़की से देखने वाले की ऐसी ही दशा होती है।

सूखी काली चट्टान की दरार में घास का एकाध अंकुर फूट कर जड़ जमा लेता है। कठोर जड़ता को छेदकर और विपरीत परिस्थिति का रस सोखकर वह आकाश की ओर उठता,रहता है। एक दिन वह कठोर काली चट्टान उसी फूटे हुए अंकुर के विस्तार में समा जाती है। आशा-निराशा का यह घूमने वाला चक्र प्रत्येक जीवन को स्पर्श करता है। गरजने वाले, उछलने वाले और आवेश करने वाले सभी लोगों को इस घास की पत्ती की ओर नज़र दौड़ानी चाहिये। क्योंकि क्रोध के क्षण जीवी-स्फुलिंगों की झाँकी के विपरीत परिस्थिति की कठोर चट्टान जैसी अवस्था को उलट नहीं सकती। लेकिन पत्थरों को बीच में से चीरते हुए और भेदते हुए तथा रस-बिन्दु खोजने वाले कुछ अंकुर कठोर चट्टान को चूर कर डालते हैं। रास्तों पर गूँजने वाले नारे केवल 'चरबी-झाड़ क्रान्ति' करवाना चाहते हैं। इससे संचित चरबी की परतें तो पिघल जाती हैं, पर ढाँचा ज्यों-का त्यों बना रहता है। उसके भरण-पोषण की व्यवस्था पूर्ववत ही रहती है और चरबी की परते चढ़ी हुई पेशियाँ भी कायम रहती हैं। चरबी का स्रोत भी कायम रहता है। यह चरबी-झाड़ प्रक्रिया सच्ची क्रांति को मंजूर नहीं होती।

कपड़े को धब्बे न लगें इसलिए उसे धोने से पहले जेब की सब चीज़ें जैसे स्याही की पुड़िया दो एक नोट या और कोई कमा हुआ चीज जेब को उलट पलट कर निकालनी पड़ती है। यह व्यवहार की सीधी सादी रीति है। भीतर-बाहर स्वच्छता की यही रीति संतों ने स्नेह और सहृदयता की शुचिता के द्वारा अपनाई है। क्रान्ति के लिए ऐसा ही निर्माण का, स्नेह का और दूरदर्शिता का कार्यक्रम आवश्यक है गरीब-अमीर, रोगी-निरोगी, स्नेही-दुष्ट आदि में संसार का विभाजन व्यर्थ है। दुनिया को जगाने वाले और सुलाने वाले, यही उसका सच्चा विभाजन है। बुद्ध, ईसा, गाँधी और ल्यूथर किंग जैसे महापुरुष दुनिया को जगाते है तो परिस्थिति से और दुःखों से, मुँह मोड़कर, उस पर सुस्ती का नशा चढ़ाकर सुलाने का प्रयत्न दूसरे लोग करते हैं। धर्म की और वादों की प्रशान्तक गोलियाँ देने वाले ये लोग चरबी की परतें चढ़ाते हैं।

तरुणाई को प्राप्त, बहुमूल्य आधार है—संघर्ष का भान। वह उसके अंतरंग में गहराई तक बैठा होता है। यह 'संकट की प्रतीति' पुरानी पीढ़ी ने भुला दी। इसलिए निर्माण की प्रेरणा का खेल नहीं होता। सिर्फ़ सजी-धजी प्रवृत्तियों का साज मिलता है। बर्ताव की, संकोच की, और जाति भेद की सारी प्रवृत्तियों के ये अदृश्य पैमाने हैं। सामने दीखने वाले अवरोधों को तो ठुकराया जा सकता है, उन्हें किसी तरकीब से हटाया भी जा सकता है; पर इन अदृश्य पैमानों को आसानी से नहीं काटा जा सकता। इन्हें मिटाने के लिए कठोर साधना करनी पड़ती है। पारदर्शक कांच की आड़ में रहकर यह मिटाना नहीं सध सकता। इस वजह से तरुणाई की तड़फड़ाहट नारियल जैसी कसी जा रही है। यह खरखराहट, यह कसने की आवाज युवा पीढ़ी की अस्वस्थता की है।

कुतिया के जैसी अजस्र भूख से व्याकुल क्रान्ति अपने ही बच्चों को खा जाती है। पुरानी पीढ़ी नयी पीढ़ी को निगल जाती है, और नयी पीढ़ी फिर अगली पीढ़ी को। तब तरुणाई के सामने यह सवाल पैदा होता है—यह जीवन क्या नरभक्षक जैसा है? क्या यह 'नरभक्षणता' शक्ति को इसी तरह खा जायेगी? चाहे जितने साज सजायें, फिर भी मनुष्य के अन्तर में कहीं-न-कहीं आदिम-प्रवृत्ति, दुर्बलता और नग्नता रहती है। उस पर साज-शृङ्गार की केवल एक माला होती है। तरुणाई अनेक प्रश्न-चिन्हों से विस्मित और आश्चर्यचकित होती है। प्रेम की अपेक्षा भूख अधिक आदिम-प्रवृत्ति होती है। क्रान्ति प्रेम की नींव पर खड़ी है या भूख की....इस पर ही उसकी भूमिका सिद्ध होने वाली है। क्रान्ति पूर्व काल में अपने ही लोगों पर किये गये अत्याचारों का इतिहास है। इसी की पुनरावृत्ति उसके मुखिया बार-बार करते हैं। बिजली के समान कौंधने वाली क्रांति से क्षण भर पहले और तत्काल बाद अन्धकार का साम्राज्य होता है। इसलिये ऐसी क्रान्ति के मोहपाश में न फँसकर तरुणाई को विद्रोही बनना चाहिये। आत्मविश्वास से ठसाठस भरी हुई तरुणाई के लिए यह सर्वथा शक्य है। उनकी पेटी घास भरे शेर के समान नहीं होती। क्रान्ति के मोह में पड़कर उसका आयात नहीं किया जा सकता। ऐसी क्रान्ति तो केवल प्रतिबिम्ब का ही प्रतिबिम्ब होती है। उसके भुलावे में आकर तरुणाई कर्मठ भले ही दिखाई दे, पर वह मृग-मरीचिका ही होती है। किसी निश्चित प्रश्न पर नजर रखकर दृढ़तापूर्वक दौड़ती हुई उसकी दिशा भी गलत होती है। प्रश्नों को कैसे, कब, किसलिए और किसके सहयोग से हल करना है—इसका भान होने पर ही इन्हें ठीक से झेला जा सकता है। उन्हें यथोचित ढंग से मोड़कर ही धारा को निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचाया जा सकता है। कार्यक्रम से भरा हुआ ऐसा पानीदार और पहलूदार आशावाद न होने पर नौजवानों

को केवल भड़काया जा सकता है। दूर नजर आने वाली दिशा चिपचिपी आँखों को दिखाई नहीं दे सकती।

तरुणाई की भूमिका कभी-कभी खेतों में खड़े किये गये पुतलों की जैसी होती है। पर जब देश पर आँधी आती है तब सत्ता से मदोन्मत्त सूअर इन पुतलों की परवाह न करते हुए खेत को साफ कर डालते हैं। युवा शक्ति को भूख है— स्वप्नों को साकार करने की। उसके कुछ ध्येय होते हैं, पर इनकी प्राप्ति के लिये प्रत्येक दिन परिश्रम से भरा हुआ होना चाहिये। जैसे नापने का बर्तन भरा जाता है, वैसे ही दिन परिश्रम से ठसाठस भरा होना चाहिये। भ्रामक भावनाओं से आवेश मे तो शक्ति का गर्भ-पात हो जाता है।

'देश के लिये मर मिटो' ऐसी घोषणाएँ करना तो आसान है, पर देश के लिए कैसे जीना चाहिये; यह कोई नहीं बताता यही असली दुखान्तिका है। नारेबाजी में केवल जोश होता है, थरथराहट होती है, पर धक्का देने वाला चैतन्य नहीं होता। फिर डुग्गी पीटकर और ढोल बजाकर समाजवाद कैसे लाया जा सकेगा? वह तो प्रत्येक स्पंदन से, कार्य से, पसीने से और हरेक हृदय में व्याप्त होकर कार्यरूप में उतरना चाहिये। ढोल की आवाज सिर्फ हवा में गूँजती है और विलीन हो जाती है। जीवन में आने वाले संकटों का साहस से मुकाबला करो अन्यथा यह कोरी नारेबाजी बन्द करो। उन्हें तो यही कहना चाहिये : 'पुट अप और शट अप' (करो या चुप बैठो)। नेतागण सरकार की बीमारी के लक्षण तो बतलाते हैं, पर उनका इलाज नहीं बतलाते। वह तरुणाई को पूछना चाहिये। 'आपकी सब बातें हो ठीक हैं, पर इनका इलाज क्या है? और क्या उसके लिये आपकी तैयारी है?' ऐसे प्रश्न तरुणाई को करने चाहिये। ऐसी दमदार इच्छा होने पर ही हमें चर्चिल के समान कहने का हक होगा कि 'सारे कीड़े-मकोड़ों में मैं चमकदार कीड़ा हूँ।' अनुशासन, जिम्मेदारी और चमक की लिपाई पर हमारा जीवन प्रतिष्ठित होना चाहिए। हमें अपनी और दूसरों की प्रवृत्तियों का अनुशासन से सामंजस्य करना चाहिए। अनुशासन न होने पर या ढीला होने पर गड़बड़-घोटाला हो जाता है। हमें स्वयं ही जिम्मेदारी संभालनी चाहिये। उसका निनाद अन्दर से ही निकलना चाहिये, अन्यथा वह कूड़ादान बनकर बोझ के समान प्रतीत होगी। अपनी प्रवृत्तियों के साथ विचरण करते समय आत्म-विश्वास की चमक होनी चाहिये। 'ग्रेस' (नम्रता) पर वह रस्मी आदत न हो या फैशन के 'शिष्टाचार' न हों। शिष्टाचार औपचारिकता का गुलाम होता है। वह लीक की छाप लगाकर तिलकधारी की तरह घूमा करता है। प्रसंग के अनुसार 'ग्रेस' भी बदल जाता है।

बुद्धिजीवी वर्ग 'दिमागी-ऐयाशी' को ही शान समझता है। 'टू मच रीजन' (अत्यधिक तर्क) यह उनकी आदत होती है जबकि युवा-वर्ग की पुकार होती है 'टू मच पैशन' (अत्यधिक प्रचंडता) और तब सिनेमा की चित्र-आकृतियाँ हर घड़ी बदलने लगती हैं, तब खुली आँखों को काबू में न रख सकने वाली तरुणाई को दुनिया धुएँ से मलिन संशयग्रस्त और बेतरतीब नजर आती है। अपने आपसे रूठी होने के कारण उसे ऐसा प्रतीत होता है; जैसे कलियों में फूलों की बहार की आहट मालूम होती है, वैसी ही भविष्य की आहट आज तरुणाई को मिलनी चाहिये। केवल पुराने प्रश्नों पर निर्भर रहने से काम नहीं चल सकेगा, साथ ही उसे सुखद भविष्य की कामना से अधीर होकर अति-उत्साहित भी नहीं होना चाहिये। गर्म साँचे में ढल जाने के समान उसे अपनी आशा का सन्देश दूसरों के लिये जीने में सार्थक बनाना चाहिए। तब उसे अपने स्नेह का संगीत सुनाई देने लगेगा। यह सब करते हुये मन में समाज के प्रति कृतज्ञता का भान होना भी चाहिये। तब

'प्रबुद्ध भारत' के प्रति

□

स्वामी विवेकानन्द

अगस्त 1898 ई० में 'प्रबुद्ध भारत' पत्रिका मद्रास से स्वामीजी हाथों में अल्मोड़ा को स्थानान्तरित हुई। उस अवसर पर लिखित 'To the नामक कविता का अनुवाद।

जागो फिर एक बार !
यह तो केवल निद्रा थी, मृत्यु नहीं थी,
नवजीवन पाने के लिए,
कमल नयनों के विराम के लिए
उन्मुक्त साक्षात्कार के लिए।
एक बार फिर जागो।
आकुल विश्व तुम्हें निहार रहा है
हे सत्य !
तुम अमर हो !

फिर बढ़ो,
कोमल चरण ऐसे धरो
कि एक रज-कण की भी शान्ति भंग न हो
जो सड़क पर, नीचे पड़ा है।
सबल सुदृढ़, आनन्दमय, निर्भय और मुक्त
जागो, बढ़े चलो और उदात्त स्वर में बोलो !

तेरा घर छूट गया,
जहाँ प्यार भरे हृदयों ने तुम्हारा पोषण किया
और सुख से तुम्हारा विकास देखा,
किन्तु, भाग्य प्रबल है—यही नियम है—
सभी वस्तुएँ उद्गम को लौटती हैं, जहाँ से
निकली थीं और नव शक्ति लेकर फिर निकल पड़ती हैं।

नये सिरे से आरम्भ करो,
अपनी जननी-जन्मभूमि से ही,
जहाँ विशाल मेघराशि से बद्धकटि,
हिमशिखर तुममें नव शक्ति का संचार कर
चमत्कारों की क्षमता देता है,
जहाँ स्वर्गिक सरिताओं का स्वर
तुम्हारे संगीत को अमरत्व प्रदान करता है,
जहाँ देवदारु की शीतल छाया में तुम्हें अपूर्व शान्ति
मिलती है।

और सब से ऊपर,
जहाँ शैल-बाला उमा, कोमल और पावन,
विराजती हैं,
जो सभी प्राणियों की शक्ति और जीवन हैं,
जो सृष्टि के सभी कार्य-व्यापारों के मूल में है,
जिनकी कृपा से सत्य के द्वार खुलते हैं
और जो अनन्त करुणा और प्रेम की मूर्ति हैं;
जो अजस्र शक्ति की स्रोत हैं
और जिनकी अनुकम्पा से सर्वत्र
एक ही सत्ता के दर्शन होते हैं।
तुम्हें उन सबका आशीर्वाद मिला है,
जो महान् द्रष्टा रहे हैं,
जो किसी एक युग अथवा प्रदेश के ही नहीं रहे हैं,
जिन्होंने जाति को जन्म दिया,
सत्य की अनुभूति की,
साहस के साथ भले-बुरे सब को ज्ञान दिया।
हे उनके सेवक,
तुमने उनके एकमात्र रहस्य को पा लिया है

तब, बोलो, ओ प्यार !
तुम्हारा कोमल और पावन स्वर !
देखो, ये दृश्य कैसे ओझल होते हैं,
ये तह पर तह सपने कैसे उड़ते हैं
और सत्य की महिमामयी आत्मा
किस प्रकार विकीर्ण होती है !

और संसार से कहो—
जागो, उठो, सपनों में मत खोये रहो,
यह सपनों की धरती है, जहाँ कर्म
विचारों की सूत्रहीन मालाएँ गूँथता है,
वे फूल, जो मधुर होते हैं अथवा विषाक्त,
जिनकी जड़ें हैं, न तने, जो शून्य में उपजते हैं,
जिन्हें सत्य आदि शून्य में ही विलीन कर देता है।
साहसी बनो और सत्य के दर्शन करो,
उससे तादात्म्य स्थापित करो,
छायाभासों को शान्त होने दो;
यदि सपने ही देखना चाहो तो
शाश्वत प्रेम और निष्काम सेवाओं के ही सपने देखो।

□ □

उन्नीसवीं शताब्दी का नव जागरण और सनातन परम्परा

□

डा० शैलनाथ चतुर्वेदी

उन्नीसवीं शती भारत के सदियों में अन्तर्निलीन तात्त्विक चेतना के जागरण का काल था। दीर्घकालीन मुसलमान शासन के बाद पश्चिम से आगत जातियों ने भारत में व्यापारिक प्रतिष्ठानों की स्थापना के साथ राजनीतिक- प्रशासनिक अधिकार भी प्राप्त कर लिये थे। उन्नीसवीं शती के आरम्भ तक उन्होंने अपनी भाषा के प्रसार के लिए कोई कार्यक्रम नहीं चलाया। यद्यपि 1797 में सर चार्ल्स ग्रांट ने ईस्ट इन्डिया कम्पनी के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स को प्रतिवेदन प्रस्तुत कर यह आग्रह किया था कि सांस्कृतिक, चारित्रिक और आर्थिक दृष्टि से पतित भारतवासिओं की उन्नति के लिये अंग्रेजी शिक्षा आरम्भ की जाय तथापि बोर्ड ने उस समय इस पर कोई ध्यान नहीं दिया।

1835 में ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने मैकॉले की प्रसिद्ध संस्तुति को स्वीकार करते हुए शिक्षा की नीति घोषित की। किन्तु इससे पहले ही ईसाई धर्म प्रचारकों के अतिरिक्त भारतवासियों का एक वर्ग भी इसकी माँग कर रहा था जिसका नेतृत्व राजा राममोहन राय कर रहे थे। उनके प्रयत्न से ही 1816 में कलकत्ता में "हिन्दू महाविद्यालय" की स्थापना हुई थी। यही विद्यालय आगे चलकर प्रेसीडेंसी कॉलेज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कलकत्ता में ही ईसाईयों ने 1820 में बिशप कॉलेज की स्थापना की थी।

ईसाई धर्म प्रचारक और राजा राममोहन राय दोनों ही अंग्रेजी शिक्षा के प्रबल समर्थक थे किन्तु उनके उद्देश्य निश्चय ही भिन्न थे। धर्म-प्रचारकों को अंग्रेजी शिक्षा में ईसाई धर्म के प्रचार का प्रबल माध्यम दिखायी दे रहा था। इसके विपरीत राममोहन राय की दृष्टि में भारत के विकास के लिये आवश्यक पाश्चात्य विद्या का ज्ञान अंग्रेजी माध्यम से ही सम्भव था, अत: वे इसके लिये बेचैन थे।

उन्नीसवीं शती के आरम्भिक दशकों में अंग्रेजी शिक्षा और ईसाई धर्म के प्रचार ने हिन्दुओं में एक ऐसा वर्ग उत्पन्न कर दिया था जो हिन्दू-धर्म से विद्वेष करने लगा था। किन्तु इन्हीं कारणों से हिन्दुओं के एक वर्ग में भिन्न प्रतिक्रिया भी हुई जिसका दर्शन राममोहन राय द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज में होता है।

राममोहन राय मुख्यत: राजनीतिक विचारक तथा समाज सुधारक थे। जिज्ञासु होने के कारण उन्होंने सभी प्रमुख धर्मों का अध्ययन उनके ग्रंथों को मूल भाषा में किया था। वे यूरोप के बुद्धिवाद से प्रभावित थे और उन्हें सभी धर्मों के मूलतत्त्वों को ग्रहण करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं था। वे इस्लाम के मूर्तिपूजा-विरोध और एकेश्वरवाद के बड़े प्रशंसक थे और ईसाई धर्म की

एकेश्वरवादी शाखा के समर्थक थे। संसार के प्रमुख धर्मों के गहन अध्ययन और पाश्चात्य ज्ञान ने उनके हृदय में विश्व एकता का भाव उत्पन्न कर दिया था। वे मानवजाति की एकता में विश्वास करने लगे थे और विभिन्न जातियों या राष्ट्रों को एक विशाल परिवार की शाखाओं के रूप में मानते थे।

इस विशाल दृष्टिकोण के बाद भी हिन्दू-धर्म पर ईसाई धर्म-प्रचारकों के आक्रमण से उन्हें बड़ा क्षोभ होता था, किन्तु वे यह मानकर सन्तोष कर लेते थे कि विजेता सदैव विजित के धर्म की भर्त्सना करते हैं या खिल्ली उड़ाते हैं। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि राममोहन राय ईसाई धर्म-प्रचारकों से हिन्दू समाज की रक्षा करना चाहते थे। ब्रह्म समाज की स्थापना के पीछे उनका यह भाव तो था ही।

उनके सामने प्रश्न यह था कि हिन्दू-धर्म के कौन से पक्ष को ग्रहण किया जाय? उन्नीसवीं शती के आरम्भ में हिन्दू समाज प्रधानतः पौराणिक धर्म के उस रूप का पालन कर रहा था, जिस पर सदियों की काई जम चुकी थी। इस धर्म के प्रति भला उन्हें क्या आकर्षण होता। राममोहन राय को हिन्दू धर्म के ऐसे पक्ष की खोज थी जो बुद्धिवाद की कसौटी पर खरा उतर सके, साथ ही जिस पर ईसाई पादरी आक्रमण न कर सकें। वह ऐसा हो, जिसमें एकेश्वरवाद का समर्थन और मूर्तिपूजा एवं अवतारवाद का विरोध हो। स्वाभाविक था कि वे उपनिषदों की ओर आकर्षित हुये। उपनिषदों ने सर्वव्यापी ब्रह्म की अवधारणा स्थापित करने के साथ अनेक आधारभूत प्रश्न उठाये थे यथा--मैं कौन हूँ, तुम कौन हो, जन्म से पूर्व क्या था, मृत्यु के बाद क्या होता है, सृष्टि क्या है आदि। उपनिषदों में न तो मूर्तिपूजा का समर्थन किया है और न अवतारवाद का। उनकी पद्धति विमर्श, विचार और विवाद को प्रोत्साहित करती है। अतः वेदान्त में राममोहन राय को हिन्दू धर्म का वह रूप मिल गया जो उनकी तर्कबुद्धि स्वीकार करती थी और जिस पर ईसाईयों के आक्रमण की आशंका न्यूनतम थी। अतः ब्रह्म समाज वेदान्त की पीठिका पर ही स्थापित हुआ।

उन्नीसवीं शती की विषम परिस्थितियों में यह हिन्दू समाज की प्रथम रचनात्मक प्रतिक्रिया थी। फिर तो एक लहर सी उठ पड़ी और यह सिलसिला उस शताब्दी के अन्त तक चलता ही रहा। अन्य सभी आन्दोलनों की चर्चा न करके यहाँ केवल आर्यसमाज का उल्लेख ही पर्याप्त होगा। उन्नीसवीं शती के आठवें दशक में स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्यसमाज का स्वरूप और विचारधारा ब्रह्मसमाज से अत्यन्त भिन्न है तथापि दोनों के संस्थापकों की दृष्टि में पर्याप्त साम्य दिखाई देता है। दोनों ने अन्य धर्मों को तर्क की कसौटी पर कसा और अपने धर्म का परीक्षण भी निर्ममता से किया। दोनों ने दूसरे धर्मों को स्वीकार योग्य मान्यताओं का समर्थन करने में संकोच नहीं किया। यदि राममोहन राय मनुष्य जाति की एकता में विश्वास करते थे तो स्वामीजी ने घोषित किया था कि "यद्यपि मैं आर्यावर्त्त में उत्पन्न हुआ हूँ... फिर भी मैं इस देश में प्रचलित धार्मिक असत्यता का समर्थन नहीं करता बल्कि उनका पूर्ण भण्डाफोड़ करता हूँ।....इसी प्रकार मैं अन्य धर्मों और उनके अनुयायियों के साथ व्यवहार करता हूँ। जहाँ तक मनुष्य जाति के उत्थान का सम्बन्ध है, मैं विदेशियों के साथ वैसा आचरण करता हूँ जैसा अपने देशवासियों के साथ। सब मनुष्यों के साथ ऐसा ही करना उचित है।" दोनों ही हिन्दू धर्म में प्रचलित बहुदेववाद, अन्ध-विश्वास और सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहे। यही नहीं, दोनों ने वैदिक धारा को ग्राह्य समझा चाहे वह वेद हो या उपनिषद्।

इस आश्चर्यजनक समानता के साथ दोनों में महान् अन्तर दिखाई देता है। जहाँ ब्रह्म समाज बंगाल के भद्रलोक की तरह अत्यन्त विनीत था वहाँ आर्यसमाज का रुख आक्रामक था। राममोहन राय ने ब्रह्म समाज भवन के न्यास सम्बन्धी नियमों में यह स्पष्ट उल्लेख किया है कि समाज में कोई भी ऐसी बात न की जाय जिससे किसी के विश्वासों को चोट पहुँचे। उधर स्वामी जी को इस्लाम या ईसाई धर्म की कटुतम आलोचना करने में कोई झिझक नहीं थी। शुद्धि आन्दोलन तो हिन्दू धर्म के इतिहास की अभूतपूर्व घटना है।

ऐसा लगता है कि आक्रामक मुद्रा होते हुए भी आर्यसमाज ने हिन्दू धर्म के लोकप्रचलित रूप की तर्कसम्मत रक्षा करने में असमर्थ होने के कारण वैदिक धर्म का पोषण किया, जिसमें न तो अवतारवाद था, न मूर्तिपूजा और न बहुदेववाद। स्वामी जी ने सम्भवतः बाइबिल और कुरान के आकर्षण से हिन्दू समाज की रक्षा हेतु वेदों की प्राचीनता और श्रेष्ठता पर बल दिया। वे पौराणिक धर्म की आलोचना उसी स्तर पर करते थे, जिस पर ईसाई पादरी कर रहे थे। यदि ईसाई पादरी ने हिन्दू धर्म की आलोचना करते हुए कहा कि "ईसा मसीह तुम्हारे देवताओं की तरह नहीं है जो मर-मिटे। रामचन्द्र लक्ष्मण के शोक में सरयू में डूब मरा। कृष्ण प्रभास तीर्थ के वन में भील के शर से मारा गया।....इस रीति से सब देवता जिन पर तुम मुक्ति की आशा रखते हो मर मिटे।" तो स्वामी जी ने वैदिक उद्धरण के आधार पर लिखा कि "जो व्यक्ति पृथ्वी, वृक्ष तथा मूर्तियों की पूजा ईश्वर की जगह करते हैं वे मूर्ख हैं तथा कष्ट और दुःखों के गर्त में गिरने योग्य है।" स्वामी जी की दृष्टि में भी पौराणिक धर्म तिरस्कार के योग्य था।

उन्नीसवीं शती में ही एक ऐसा व्यक्ति भी अवतरित हुआ जिसके व्यक्तित्व में हिन्दू धर्म अपने पूर्ण गौरव के साथ अभिव्यक्त हो रहा था और वह व्यक्ति थे रामकृष्ण परमहंस। उन्होंने न तो कोई आन्दोलन चलाया और न रक्षात्मक या आक्रामक मुद्रा ही अपनायी। किन्तु उनके माध्यम से हिन्दू-धर्म का समग्र अंश— वह जो लोक में प्रचलित था—संसार के सामने उपस्थित हुआ। परमहंसदेव संत थे। ईसाई और इस्लाम का प्रचार, हिन्दू धर्म पर उनके आक्रमण, उनसे रक्षा के उपाय आदि का उनके लिए कोई अर्थ नहीं था। वे निरहंकारी, निष्कलुष, अतिसंवेदनशील, श्रद्धालु और आस्थावान् व्यक्ति थे। वे आध्यात्म के उस उच्च धरातल पर पहुँच चुके थे जहाँ से छोटी-छोटी चीजें दिखायी ही नहीं देती, जहाँ पहुँचकर भेद मिट जाते हैं और कण-कण में परमसत्ता का दर्शन होता है। उन्होंने वैष्णव, शैव, शाक्त, तान्त्रिक, अद्वैतवादी, मुसलमान और ईसाई पद्धतियों की साधना से एक ही सत्य का साक्षात्कार किया था। वही अनुभूति भारत की आध्यात्मिक चेतना का सारतत्त्व है।

परमहंस देव का अवतरण हिन्दू धर्म के इतिहास की युगान्तकारी घटना है। जिस युग में विदेशी धर्मावलम्बियों की आलोचना से बचने अथवा उन पर आक्रमण करने के लिए पौराणिक परम्परा का तिरस्कार आवश्यक समझा जा रहा था, जब शिक्षित हिन्दू इस परम्परा से जुड़ने में लज्जा का अनुभव कर रहा था, उस समय परमहंस देव के रूप में हिन्दू धर्म का विराट् रूप मूर्तिमन्त होकर आविर्भूत हुआ। यह रूप आगम, निगम तथा लोक परम्परा की दीर्घकालीन परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया, संघर्ष-संश्लेषण से विकसित हुआ था। यही वह पद्धति है जिससे भारत की संस्कृति का निर्माण हुआ। इस प्रक्रिया में नियामक तत्व सहिष्णुता, समन्वय एवं वैविध्य में एकत्व का भाव है। दुर्भाग्यवश उन्नीसवीं शती के धार्मिक-सामाजिक आन्दोलनों के

संचालकों ने इस विराट् पौराणिक धर्म के उस काल में प्रचलित रूप को देखकर ही उसे त्याज्य मान लिया था।

रामकृष्ण परमहंस ने हिन्दू धर्म के इस सारतत्व को आत्मसात कर लिया था कि सर्वत्र एक ही सत्ता व्याप्त है और उसका सभी जीवों में निवास है। अतः मानवमात्र की सेवा ईश्वर की आराधना है। परमहंस देव को अपने विश्वासों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का स्पष्टीकरण देने की आवश्यकता नहीं थी। उन्हें निन्दा या स्तुति से कोई प्रयोजन नहीं था। तथापि निर्मल मन, स्नेहसिक्त वाणी तथा शुद्ध आचार सम्पन्न काली मन्दिर के प्रायः अपढ़ पुजारी में चुम्बकीय आकर्षण था, ऐसा गहरा आकर्षण जिससे केशव चन्द्र सेन जैसे विद्वान् ब्रह्म समाजी भी नहीं बच सके।

उनके शिष्यों में अन्यतम थे नरेन्द्र, जो आगे चलकर विवेकानन्द के नाम से विख्यात हुए। वे परमहंस देव के अनन्य भक्त तो थे ही, उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा भी प्राप्त की थी। अतः उनका व्यक्तित्व और दृष्टि अपने गुरु से भिन्न थी। वे न केवल भारतीय समाज की तत्कालीन समस्याओं के प्रति जागरूक थे अपितु भारत के भविष्य का स्वप्न भी देख रहे थे। यह उन जैसे तेजस्वी, प्रखर बुद्धि सम्पन्न एवं अतिसंवेदनशील युवक के लिए स्वाभाविक भी था। जहाँ परमहंस देव मुख्यतः भक्त थे। विवेकानन्द के हृदय में देश की सामाजिक-राजनीतिक दुर्गति देखकर विषाद का ज्वार उठ रहा था। अतः संन्यासी होकर भी वे मात्र संन्यासी नहीं रह सकते थे। अपने गुरु के स्पष्ट विचारों को उन्होंने विविध प्रसंगों में व्याख्या सहित न केवल प्रस्तुत किया, अपितु रामकृष्ण मिशन के माध्यम से उन्हें क्रियात्मक रूप दिया।

हिन्दू धर्म के सारतत्त्व को उन्होंने परमहंस से प्राप्त किया था। इसमें भक्ति और वेदांत, निराकार और साकार का समन्वय है। जीव के रूप में ब्रह्म ही तो सर्वत्र विद्यमान है। इसलिए मानवमात्र प्रेम का पात्र है और उसकी सेवा ईश्वर आराधना है। यह भावना न केवल हृदय को शुद्ध करती है अपितु अहंकार को भी समाप्त करती है। उस दशा में 'स्व' और 'पर' का भेद समाप्त हो जाता है। तभी विश्वात्मा का साक्षात्कार होता है और वही अनुभूति मनुष्य जीवन की पूर्णता है। विवेकानन्द के शब्दों में—"यही हिन्दुओं का धर्म है।"

शिकागो के धर्म सम्मेलन में स्वामी जी ने पौराणिक धर्म के मर्म को स्पष्ट करते हुए बताया कि "यह मैं प्रारम्भ में ही आपको बता देना चाहता हूँ कि भारतवर्ष में अनेकेश्वरवाद नहीं है। प्रत्येक मन्दिर में यदि कोई खड़ा होकर सुने तो वह यही पायेगा कि भक्तगण सर्वव्यापकता आदि ईश्वर के सभी गुणों का आरोपण उन मूर्तियों में करते हैं। यह अनेकेश्वरवाद नहीं है और न एकेश्वरवाद से ही इस स्थिति की व्याख्या हो सकती है। गुलाब को चाहे दूसरा कोई भी नाम क्यों न दे दिया जाय, पर वह वैसी ही मधुर सुगंध देता रहेगा।"

मूर्तिपूजा का रहस्य स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि "मेरे भाइयो, मन में किसी मूर्ति के बिना आए कुछ सोच सकना उतना ही असम्भव है जितना श्वाँस लिए बिना जीवित रहना। साहचर्य के नियमानुसार भौतिक मूर्ति से मानसिक भावविशेष का उद्दीपन हो जाता है, अथवा मन मे भावविशेष का उद्दीपन होने से तदनुरूप मूर्तिविशेष का भी आविर्भाव होता है। इसीलिए तो हिन्दू आराधना के समय बाह्य प्रतीक का उपयोग करता है।" और फिर यह तो आध्यात्म-साधना की प्रथम सीढ़ी है। उन्होंने तर्क दिया, "यदि कोई मनुष्य अपने दिव्य स्वरूप को मूर्ति की सहायता से अनुभव कर सकता है तो क्या उसे पाप कहना ठीक होगा? और जब वह उस अवस्था के परे पहुँच

गया है, तब भी उसके लिए मूर्ति-पूजा को भ्रमात्मक कहना उचित नहीं है। हिन्दू की दृष्टि में मनुष्य भ्रम से सत्य की ओर नहीं जा रहा है, वह तो सत्य से सत्य की ओर, निम्नश्रेणी के सत्य से उच्च श्रेणी के सत्य की ओर अग्रसर हो रहा है। हिन्दू मतानुसार निम्नतम जड़-पूजावाद से लेकर सर्वोच्च अद्वैतवाद तक जितने धर्म हैं, वे सभी अपने-अपने जन्म तथा साहचर्य की अवस्था द्वारा निर्धारित होकर उस असीम के ज्ञान तथा उपलब्धि के निमित्त मानवात्मा के विविध प्रयत्न हैं, और प्रत्येक प्रयत्न उन्नति की एक अवस्था को सूचित करता है, जो धीरे-धीरे ऊंचे उठता हुआ तथा अधिकाधिक शक्ति सम्पादन करता हुआ अन्त में उस भास्कर सूर्य तक पहुँच जाता है।" पौराणिक धर्म में सम्मिलित साधना की विभिन्न विधियों की इससे अच्छी व्याख्या नहीं हो सकती। विवेकानन्द के स्वर में न तो बलपूर्वक किसी बात को सिद्ध करने का आग्रह है और न ही किसी प्रकार का संशय है।

उन्नीसवीं शती के वातावरण में जब पौराणिक धर्म की सनातन परम्परा विधर्मियों के द्वेषपूर्ण आक्षेपों का लक्ष्य बन रही थी, जब स्वयं अनेक भारतीयों की दृष्टि में यह परम्परा तिरस्कृत हो रही थी, परमहंस देव और विवेकानन्द ने सहस्रों वर्षों में नाना चिन्तन धाराओं के समन्वय से विकसित इस परम्परा की न केवल समुचित व्याख्या की अपितु उसे व्यावहारिक रूप देकर गौरव-मण्डित किया।

(तपोभूमि से साभार)

□ □

Let Us Remember Swamy Vivekanand

☐

S. N. Subba Rao

After his historic address at the Parliament of Religions at Chicago in America in September 1893, U. S. newspapers published Swamy Vivekananda's photographs with the caption 'Hindu Monk of India' and a popular paper highlighted the news, "It is foolish to send preachers from the west to India, a country that produces men like Swami Vivekananda !"

Great India needs Large Hearts

Swami Vivekananda had personified the edict from the Indian ancient scriptures, "People with small hearts have their house within the four walls ; but for those with large hearts, the whole Universe is the home." Swamiji said in the same spirit, "All expansion is life, contraction death." Then what is real Hinduism ? Swamiji said again, "Hindus accept every religion, praying in the mosque of the Mohammadans, worshipping before the fire of the Zoroastrians, and kneeling before the cross of the Christians, knowing that all the religions from the lowest fetishism to the highest absolutism, mean so many attempts of the human soul to grasp and realise the infinite..."

If India is in trouble today, it means we do not have those large hearts. Let us enlarge our hearts and bring back that greatness to India.

Elevate Hinduism

Among the many revolutionary statements made by Swami Vivekananda was, "The fall of Hinduism began the day the word 'Mlechha' entered into its vocabulary."

Should we not learn his lessons even after 100 years of the great Master ?

The Great Massage to Humanity

After Swami Vivekananda's 3 minute long electrifying address to the Parliament of Religions in Chicago in the U. S. A., the 6,000 delegates assembled there from all parts of the world got so mad after him that thereafter, whenever people began to leave the hall, the President would announce, "Swami Vivekananda would speak after the other speakers are over !" And the crowds would return !

In his last address to the Parliament of Religions on September 27, 1893, the great son of India said,

"If the Parliament of Religions has shown anything to the world it is this : It has proved to the world that Holiness, Purity and Charity are not the exclusive possessions of any church in the world and that every system has produced men and women of the most exalted character. In the face of this evidence, if anybody dreams of the exclusive survival of his own religion and the destruction of others, I pity him from the bottom of my heart, and point out to him that upon the banner of every religion will soon be written, in spite of resistance,

"Help and not fight

Assimilation and not destruction

Harmony and peace and not dissension."

Shall we Indians and Hindus not live worthy of Swami Vivekananda ? This is a day for every Indian to dedicate himself or herself to the cause of a united, integrated, peace-loving, strong India.

□ □

विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र, पडरौना : प्रगति आख्या-वर्ष 1990-91

डॉ० चतुर्भुज सिंह

विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र की स्थापना वर्ष 1985 में की गई थी। केन्द्र का मुख्य उद्देश्य युवा वर्ग में सांस्कृतिक परम्परा की चेतना जागृत करना और उनकी रचनात्मक क्षमता को सामाजिक कार्यों के लिए उपयोगी बनाना है।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए केन्द्र ने 1985 में एक अखिल भारतीय दस दिवसीय युवा शिविर का आयोजन कर कार्य प्रारम्भ किया। इस शिविर में 9 राज्यों के लगभग 150 भाई-बहन एकत्र हुए। यह शिविर पडरौना से 2 कि० मी० पश्चिम पडरौना—रामकोला सड़क पर स्थित बन्धूछपरा ग्राम की बस्ती को सुनियोजित ढंग से व्यवस्थित करने और गाँव की सड़कों के निर्माण हेतु लगाया गया। उसी अवसर पर यह निश्चय किया गया कि केन्द्र इस ग्राम में विकास कार्य आगे भी करता रहेगा। इस प्रकार बन्धूछपरा के विकास का कार्य ग्राम वासियों और शासन के सहयोग से विधिवत प्रारम्भ हुआ।

सर्वप्रथम वहाँ सम्पर्क मार्ग का निर्माण कर खड़न्जा बिछाया गया। पेयजल की समस्या एवं आवागमन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए एक पुराने कुएँ का जीर्णोद्धार व पुलिया का निर्माण हुआ। सम्पर्क मार्ग के दोनों ओर वृक्ष लगाये गये। दो हैण्ड पाइप लगा कर स्वच्छ जल प्रदान किया गया। केन्द्र की प्रेरणा से गाँव के 30 लक्ष्य दम्पत्तियों ने परिवार कल्याण योजना का लाभ प्रसन्नतापूर्वक उठाया।

स्वरोजगार योजना के अन्तर्गत अनेक कार्य किये गये। रिक्शा, पशुपालन व दुकान खोलने के लिए अनेक व्यक्तियों को ऋण उपलब्ध कराया गया। कुछ उद्योगों में प्रशिक्षण की व्यवस्था भी की गई, तथा टाट पट्टी बनाना, पाव-दान बनाना व धूम रहित चूल्हे बनाना आदि। उल्लेखनीय है कि गाँव की दो महिलाएँ इस प्रकार के चूल्हे बनाने में इतनी निपुण हो गई हैं कि उनका उपयोग प्रशिक्षण देने के लिए किया जा रहा है।

गाँव में इन्दिरा आवास योजना के अन्तर्गत 14 मकानों का निर्माण हुआ। यह निर्माण ग्राम वासियों के परस्पर सहयोग से सम्पन्न होने के कारण अत्यन्त स्तरीय है। इस कार्य में केन्द्र के स्वयंसेवकों का विशिष्ट योगदान रहा।

केन्द्र की एक अन्य महत्वपूर्ण उपलब्धि ग्राम में पंचायत भवन का निर्माण है। लक्ष्य दम्पत्तियों द्वारा परिवार कल्याण योजना अपनाने के कारण ग्राम को 15000/= पुरस्कार प्राप्त हुआ, तदनन्तर ब्लाक से 35000 रुपये और प्राप्त हुए। शासन के इस आर्थिक सहयोग तथा ग्राम-

वासियों एवं स्वयंसेवकों के श्रम का फल है, पंचायत भवन। इस प्रकार बन्धूछपरा को यह महत्वपूर्ण उपलब्धि हुई। इसके साथ ही 66 फीट परिधि का एक विशाल चबूतरा भी बनाया गया है जिसका उपयोग ग्रामवासी विभिन्न कार्यों के लिए करते हैं।

केन्द्र की प्रेरणा से किये जाने वाले कार्यों में सर्वाधिक विशिष्ट एवं लोकप्रिय चक रोड का निर्माण है। यह सर्वविदित है कि जहाँ भी चकबन्दी हुई है, वहाँ चकरोडों के लिए भूखण्ड सुरक्षित किये गये हैं किन्तु रोड का निर्माण नहीं हो सका है। इनके महत्व को समझते हुए केन्द्र ने प्रशासन से सहायता और ग्रामवासियों से सहयोग लेकर, चकरोडों का नाप-जोख कराया और उसके बाद उन मार्गों पर श्रमदान से मिट्टी डलवा कर निर्माण कार्य पूर्ण कराया। आज बन्धू-छपरा गाँव के किसी भी खेत में ट्रैक्टर, बैलगाड़ी, रिक्शा आदि से पहुँचा जा सकता है।

इस प्रकार के प्रयत्नों का सबसे बड़ा परिणाम यह हुआ कि निकटवर्ती ग्रामवासियों के मन में भी चकरोडों के निर्माण की इच्छा जाग्रत हुई और उन्होंने केन्द्र से सम्पर्क कर अपने यहाँ चकरोड बनवाने का प्रस्ताव रखा।

प्रशासनिक अधिकारियों की तत्परता के कारण इस कार्य में कोई कठिनाई नहीं हुई और सेवक छपरा, बकुलहा, जंगल चौरिया, जंगल जगदीशपुर, भटवलिया और कंठी छपरा में भी चकरोडों का निर्माण हुआ।

इस प्रकार के रचनात्मक कार्यों के अतिरिक्त केन्द्र ने वहाँ के ग्राम निवासियों के स्वास्थ्य, शिक्षा, पशुपालन, उन्नति शक्ति बीज भी उपलब्ध कराने में सहायता की। नरेन्द्रदेव कृषि वि०वि०, फैजाबाद के सहयोग से बन्धूछपरा में गेहूँ एवं धान के उन्नतिशील बीजों का प्रदर्शन क्षेत्र बनाकर क्षेत्र के लोगों को आधुनिक एवं वैज्ञानिक कृषि हेतु प्रोत्साहित किया गया फलस्वरूप पैदावार में आशातीत वृद्धि हुई।

इस समय केन्द्र ने रेशम के कीड़े पालने के लिए बड़े पैमाने पर शहतूत के पौध लगाने की योजना बनाई है। अगले वर्ष वर्षा ऋतु में 10,000 पौधे लगाने की योजना है। अभी यह कार्य आरम्भ हुआ है और पिछले सत्र में 16 किलोग्राम ककून बेचकर इसका श्री गणेश किया गया है।

विगत 11 फरवरी को पडरौना नगर में विवेकानन्द वाचनालय की स्थापना की गई जिसका उद्‌घाटन पडरौना के विधायक श्री असगर अली ने किया। इस वाचनालय में पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं जिसका लाभ क्षेत्र के लोगों को मिल रहा है।

केन्द्र के पास ग्रामवासियों की श्रमशक्ति है, युवकों को ऊर्जा है और कुछ करने की तमन्ना है। इससे जुड़े हुये लोग मुख्यतः विद्यार्थी हैं अथवा किसी व्यवसाय से सम्बद्ध हैं। वे सेवा को अपना कर्तव्य समझते हैं। सौभाग्य से अपनी योजनाओं के क्रियान्वयन में केन्द्र को सभी वर्गों का सहयोग, स्नेह व मार्ग के दर्शन मिल रहा है, विशेष रूप से प्रशासनिक अधिकारियों का। संयोग से जिन अधिकारियों से भी कार्य की आवश्यकता हुई उन सभी में इतनी समझ और संवेदनशीलता थी कि उन्होंने भरसक सहयोग दिया। पडरौना नगर के बुद्धिजीवियों, चिकित्सकों, विधिवेत्ताओं, व्यवसायियों, पत्रकारों, जनसेवकों आदि सभी का सहयोग हमें मिलता रहा है। इसी से हम कुछ कर सकने में सफल हुये हैं। वस्तुतः आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन लाने का सर्वोत्तम उपाय परस्पर सहयोग और समझ है।

□ □

विवेकानन्द जयन्ती समारोह 1991

□

स्थापना वर्ष से ही विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र प्रति वर्ष स्वामी विवेकानन्द जी के जन्म दिवस के सुअवसर पर 'विवेकानन्द जयन्ती समारोह' भव्यतापूर्वक आयोजित कर रहा है। इस वर्ष यह समारोह उदित नारायण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पडरौना के परिसर मे हुआ।

समारोह में पधारे हुए गण्यमान्य अतिथियों और युवक-युवतियों का स्वागत करते हुए विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र के अध्यक्ष डॉ० शैलनाथ चतुर्वेदी (प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय) ने उन्नीसवीं शताब्दी के भारत के राजनीतिक और सांस्कृतिक वातावरण और उसमें जन्म लेने वाले भारतीय महापुरुषों का उल्लेख करते हुए स्वामी विवेकानन्द के योगदान की चर्चा की। उन्होंने इस तथ्य पर बल दिया कि आज की सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति में स्वामी विवेकानन्द के विचारों और आदर्शों की जितनी आवश्यकता है, उतनी सम्भवतः पहले कभी नही रही।

विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र के सचिव डॉ० चतुर्भुज सिंह ने केन्द्र द्वारा किए जा रहे कार्यों का विवरण प्रस्तुत किया जिनमे बंधू छपरा गाँव में चलाये गये विकास एवं साक्षरता कार्यक्रम, पडरौना में विवेकानन्द पुस्तकालय एवं वाचनालय की स्थापना एवं बन्धूछपरा के निकटवर्ती गाँवों में चकरोड निर्माण कार्य उल्लेखनीय हैं।

समारोह के मुख्य अतिथि प्रोफेसर भूमित्र देव (कुलपति, गोरखपुर विश्वविद्यालय) ने स्वामी विवेकानन्द के शिकागो के प्रसिद्ध व्याख्यान का ध्यान दिलाते हुए उनके व्यक्तित्व का विवेचन किया। उन्होंने युवाओं की ऊर्जा, चपलता और सजगता की चर्चा करते हुए उनको स्वयं में बुद्धिमत्ता, एकाग्रता, जिज्ञासा और निरीक्षण के गुणों का समावेश करने एवं जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने का सुझाव दिया।

समारोह में उपस्थित पडरौना के युवा ज्वायंट मजिस्ट्रेट श्री महेश कुमार गुप्त ने युवक-युवतियों को ग्रामीण क्षेत्रों की समस्याओं को समझने और समाधान करने की प्रक्रिया में संलग्न होने का आह्वान किया।

समारोह में विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र द्वारा इण्टरमीडिएट एवं स्नातक वर्गों में आयोजित भाषण और लेख प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कृत किया गया।

अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए डॉ० हृदयनन्दन सिंह (प्राचार्य, उदित नारायण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पडरौना) ने स्वामी विवेकानन्द को श्रद्धा सुमन अर्पित किये। अन्त में श्री केदार नाथ मिश्र (वरिष्ठ उपाध्यक्ष, विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र) ने आगन्तुकों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया। कार्यक्रम का संचालन श्री राघवेन्द्र कृष्ण प्रताप (प्राध्यापक, ए० पी० एन० डिग्री कालेज, बस्ती) ने किया।

□ □

युवा शक्ति के श्रम सीकर से सिंचित होता कुशीनगर

☐

आनन्दवर्धन

वर्तमान स्थितियों में राष्ट्रीय एकता और अखण्डता की अस्मिता खतरे में है। इस राष्ट्रीय एकता को चिरस्थायी बनाये रखने में युवा वर्ग की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह कार्य युवा वर्ग तभी सम्पन्न कर सकता है, जब उनमें नेतृत्व शक्ति का विकास हो। इसी महान उद्देश्य को लेकर प्रख्यात समाजसेवी संस्था 'राष्ट्रीय युवा योजना, जौरा (म० प्र०), पूरे देश के कोने-कोने में राष्ट्रीय एकता युवा नेतृत्व शिविर का आयोजन कर युवाओं में नेतृत्व शक्ति और राष्ट्रीय एकता को मजबूत बनाये रखने के विचार व दृष्टि का विकास कर रही है।

इसी की एक कड़ी महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्वाण स्थल कुशीनगर में आयोजित राष्ट्रीय एकता युवा नेतृत्व शिविर है। इस शिविर का आयोजन दिनांक 15 फरवरी से 22 फरवरी 1991 तक किया गया। इस शिविर में 16 राज्यों से आये 248 प्रतिभागियों ने हिस्सा लिया। ये राज्य थे—आसाम, आंध्र प्रदेश, बिहार, दिल्ली, गुजरात, हिमांचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर, उड़ीसा, पाण्डिचेरी, पंजाब, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश। 46 महिलाओं और 202 पुरुषों के इस परिवार के श्रम सीकर से कुशीनगर की पवित्र भूमि सिंचित हुई।

शिविर का शुभारम्भ 15 फरवरी को प्रातः 5 बजे से हुआ। 'नौजवान आओ रे, नौजवान गाओ रे' गीत गाकर युवाओं ने कुशीनगर निवासियों को अपने आगमन की प्रथम सूचना दी। जब-जब नौजवानों ने गीत गाये तो गगन गुंजित हो उठा और धरती माँ का वक्ष गर्व से चौड़ा हो उठा, अपने सपूतों की प्रबल आकांक्षा को देखकर।

शिविर का उद्घाटन किया केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मन्त्री श्री राजमंगल पाण्डेय ने। प्रो० भूमित्र देव (कुलपति, गोरखपुर विश्वविद्यालय) ने उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता की। श्री पाण्डेय ने युवाओं से अपील की कि वे जाति, धर्म, भाषा, एवं क्षेत्रीयता की भावना से ऊपर उठकर मजबूत राष्ट्र के निर्माण में सरकार की मदद करें। श्री पाण्डेय ने कहा कि विघटनकारी शक्तियों का मुकाबला करने के लिये युवा शक्ति का समुचित उपयोग किया जा सकता है। उन्होंने छात्रों में राष्ट्र भक्ति एवं चरित्र निर्माण की भावना को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता पर बल दिया। प्रो० शैलनाथ चतुर्वेदी ने शिविर व शिविर के संचालक श्री एस० एन० सुब्बाराव का परिचय दिया। श्री सुब्बाराव ने कहा कि देश के सम्पूर्ण बजट का एक प्रतिशत भाग युवा शक्ति को रचनात्मक कार्यों में लगाने के लिये खर्च करना चाहिये। इससे भाषा, धर्म, जाति, एवं प्रान्तों के विवादों को समाप्त किया जा सकता है। समारोह का संचालन डॉ० वेदप्रकाश पाण्डेय ने किया और धन्यवाद ज्ञापन भिक्षु ज्ञानेश्वर ने किया।

[विर के सहभागियों द्वारा निर्मित बुद्ध सरोवर, कुशीनगर

वा नेतृत्व शिविर, कुशीनगर के उद्घाटन समारोह के मंच पर आसीन
एन० सुब्बाराव, निदेशक युवा शिविर, श्री राज मंगल पाण्डेय,
राधन मंत्री, भारत सरकार तथा प्रोफेसर भूमित्र देव, कुलपति,
गोरखपुर विश्वविद्यालय
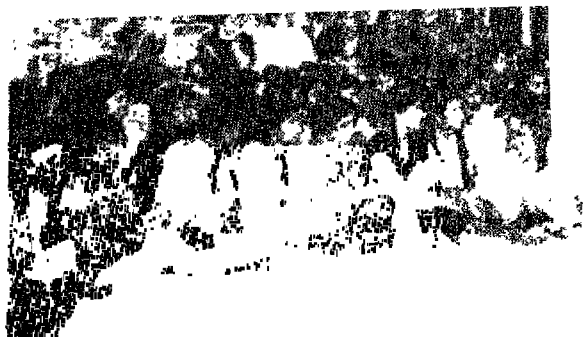
केन्द्र द्वारा पडरौना में आयोजित विवेकानन्द जयन्ती,
पर उपस्थित जन समूह

उद्घाटन समारोह मे युवा नेतृत्व शिविर, कुशीन

शिविर के दैनिक कार्यक्रमों में युवा गीत, श्रमदान, भाषा-शिक्षण, समूह-चर्चा, सामूहिक खेल, प्रतिभा-विनिमय, सर्व धर्म प्रार्थना और सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रमुख थे। प्रतिदिन प्रातः 5 बजे युवा गीत से दिन की शुरुआत होती थी। उसके पश्चात श्रमदान का कार्यक्रम होता था। 4 घन्टे प्रतिदिन कड़ा श्रम करके युवाओं ने बर्मा बुद्ध मन्दिर में 100×150 फीट और 6 फीट गहरा बुद्ध सरोवर निर्मित किया। इस प्रकार कुल 90 हजार क्यूबिक फिट का कार्य सम्पन्न हुआ। सरोवर के चारों ओर वृक्ष लगाये गये। भाषा शिक्षण में शिविरार्थियों ने हिन्दी, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, आसामी, बंगला, उड़िया और पंजाबी भाषाएँ सीखीं।

समूह चर्चा में प्रत्येक राज्य के शिविरार्थियों ने अपने क्षेत्र की समस्याओं, उनके निवारण, साक्षरता अभियान, वृक्षारोपण, सांप्रदायिकता, युवाओं में निराशा, नशाखोरी, दहेज प्रथा, अन्तर-जातीय विवाह आदि विषयों पर चर्चाएँ की। प्रतिभा विनिमय के कार्यक्रम में कहीं कोई जूडो सीख रहा था, कहीं पर हिमांचली नृत्य हो रहा था, कहीं आसाम के बिहू नृत्य की छटा थी तो कहीं कोई योग सीख रहा था। ज्योतिष की कक्षा में भी भारी भीड़ दिखाई दी।

सांस्कृतिक कार्यक्रमों में सभी राज्यों की समान प्रतिभागिता रही। कहीं उ० प्र० के लोकगीत थे तो कहीं पंजाब की रंगीन छटा, कहीं राजस्थान के गीत थे और कहीं तमिलनाडु-कर्नाटक के गीत।

शिविर का समापन 22 फरवरी 1991 को गोरखपुर में विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग में समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ। समारोह के मुख्य अतिथि थे सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के कुलपति पद्मश्री डॉ० विद्यानिवास मिश्र एवं अध्यक्षता की गोरखपुर विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ० भूमित्रदेव ने। समारोह का शुभारम्भ श्री सुब्बाराव जी की सर्वधर्म प्रार्थना से हुआ। तदनन्तर प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधियों ने खड़े होकर अपनी भाषा में नारे लगाए और इस प्रकार देश के विभिन्न भाषा-भाषियों की उपस्थिति का परिचय दिया। मुख्य अतिथि ने अपने उद्बोधन में वहाँ उपस्थित लघु भारत का स्वागत करते हुये देश की एकता के तत्वों को रेखांकित किया। राष्ट्र निर्माण में नवयुवकों की भूमिका का महत्व निरूपित करते हुए उन्होंने उनको क्षमताओं का स्मरण दिलाया। प्रो० भूमित्रदेव ने अपने अध्यक्षीय भाषण में अखिल भारतीय शिविर के आयोजन की महत्ता प्रतिपादित करते हुये विश्वविद्यालय के प्रांगण में शिविरार्थियों का स्वागत किया। अन्त में भिक्षु ज्ञानेश्वर जी ने शिविरार्थियों और इस आयोजन में सहायक सभी संस्थाओं एवं व्यक्तियों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया। समारोह के अन्त में विभिन्न राज्यों के लोकगीत, नृत्य आदि प्रस्तुत किये गये। इस अवसर पर एक स्मारिका भी प्रकाशित की गई जिसे डॉ० ओम प्रकाश श्रीवास्तव ने विशिष्ट अतिथियों को समर्पित किया।

इस शिविर की सफलता के लिए विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र, पडरौना और बर्मा बुद्ध मन्दिर, कुशीनगर बधाई के पात्र हैं।

□ □

LIST OF PARTICIPANTS

Organisors

1. S. N. Subbarao, NYP 221, D. D. U. Marg, New Delhi—110002
2. Ran Singh Parmar, M. G. S. A. Joura, Distt. Morena—476221 (M. P.)
3. Bhikshu Gyaneshwar, Burmi Buddha Vihar, Kushinagar, Disst.—Deoria—274403 (U. P.)
4. H. R. Eshwara Jois, 67, Vasappa Layout, Hanumant Nagar, Bangalore—19 (Karnataka)
5. Dr. C. B. Singh, Sect. Vivekanand Yuva Kalyan Kendra, Padrauna, Distt.—Deoria—274304 (U. P.)
6. Hari Narain Lal 7, Kalyanpur, Gorakhpur—273001 (U. P.)
7. Om Prakash Rai, 227, Nahar Road, Rustampur, Gorakhpur (U. P.)
8. S. K. Bhattacharjee, 3/108, Kasia Road, Gorakhpur—273001 (U. P.
9. Madan Mohan Gupta. Sudhakunj, Mansarover, Ramlila Ground, Purana Gorakhpur, Gorakhpur—273015 (U P.)
10. Dr. R. C. Gupta, B. B. P. G. College, Jhansi—284001 (U. P.)
11. Dr. R. C Lal, Krishna Bhawan, Shastri Nagar, Ghazipur—233001 (U P.)
12. Dr. Shri Niwas Gupta, 16, Nehru Nagar, (Terhwa) Maharajganj—273303 (U. P.)
13. Harish Chandra Nath Tiwari, Sikanderpur, Distt.—Ballia (U. P.)
14. R. M. Anadeo, 5/F, Dharam Tekri, Chhindwara—480001 (MP)
15. Sheela Vyas, 3, Brahmingali, Bahadurganj, Ujjain—456001 (MP)
16. Pushpa Chaurasia, 'Chandralaya', 6/270, Free Ganj, Ujjain—45600 (MP)
17. Miss. Kartar Kaur Ahuja, J. G Senior Secondry School, Rupa Mis Street, Ludhiana—140001 (Punjab)
18. Mrs Radha Sharma, As No. 17
19. Kedar Nath Mishra, Vill. Chakhari Khas, P. O. Tamkuhi. Distt. Deoria (U. P.)
20. Anand Vardhan Sharma 11, Teachers' Colony, S Sanskrit University, Varanasi—221002 (U. P.)
21. Sunil Sharma, 600, Chirag Delhi, Delhi

22. Vijay Kumar Bharatiya, A/12, R. B. Society, Shahi Baug, Ahmedabad—380004 (Gujarat)
23. V. S. Gautam, As No. 2
24. Dhananjay Mishra, C/o. S L. Kulshretha (Adv.), Joura, Distt. Morena—476221 (MP)
25. V. Palanichamy, Alagarsamy Puram, Melavadakarai, Peuyakulam, Madurai—626501 (Tamil Nadu)
26. S. N. Chaturvedi, 11, Hirapuri, University Campus, Gorakhpur—273009 (U. P.)

Assam

1. Bimodeswar Kalita, Vill. Rampur, P. O. Rampur (Dekapara), (Tihu), Distt. Barpeta—781371
2. Samudra Talukdar, Vill. Nizkhana, P. O. Jolkhana (Tihu), Distt. Nalbari—781371
3. Hemanta Bharali—As No. 2
4. Ajit Kumar Kalita, Vill. Kanimara, P. O. Bhaluki (Tihu), Distt. Barpeta—781371
5. Kalyan Kumar Mahanta. Vill. Bangaon, P. O. Bangaon (Tihu), Distt. Barpeta—781375
6. Paresh Chand Kalita, As No. 2
7. Heramba Pr. Baruah, Vill. Gomthapara, P. O. Deodhanighat, Distt. Darrong—784147
8. Birendra Kr. Nath, Vill. Salaipara, P. O. Deodhanghat, Distt. Darrong—784147
9. Bipin Ch. Baruah, Vill. Jhargaon, P. O. Baralakhat, Distt. Darrong 784125
10. Biren Nath, Vill. Hizsarabari, P. O. Deodhanighat, Distt. Darrong
11. Miss. Sonali Mahanta, As No. 10
12. Miss. Mira Hazarika, As No. 7
13. Bhuson Kalita, Vill. & P. O. Ziakun, Distt. Kamrup—781134
14. Kailash Nath, Vill. Rajapukhuri, P. O. Bhagabatiparah, Distt. Kamrup—781132
15. Dipankar Goswami, Vill. Mirza 1 No. Road, P. O. Mirza Distt. Kamrup—781125
16. Krishna K. Deva Sarmah, Vill. Kochnara, P. O. Mirza, Distt. Kamrup—781125
17. Heramba Kr. Kalita, Vill. & P. O. Ziakur, Distt. Kamrup—781134
18. Miss. Ira Devi, Vill. Kochpara, P. O.—Mirza, Distt. Kamrup— 781125.
19. Suren Deka, Vill. & P. O. Nizbahjani, Distt. Nalbari—781335
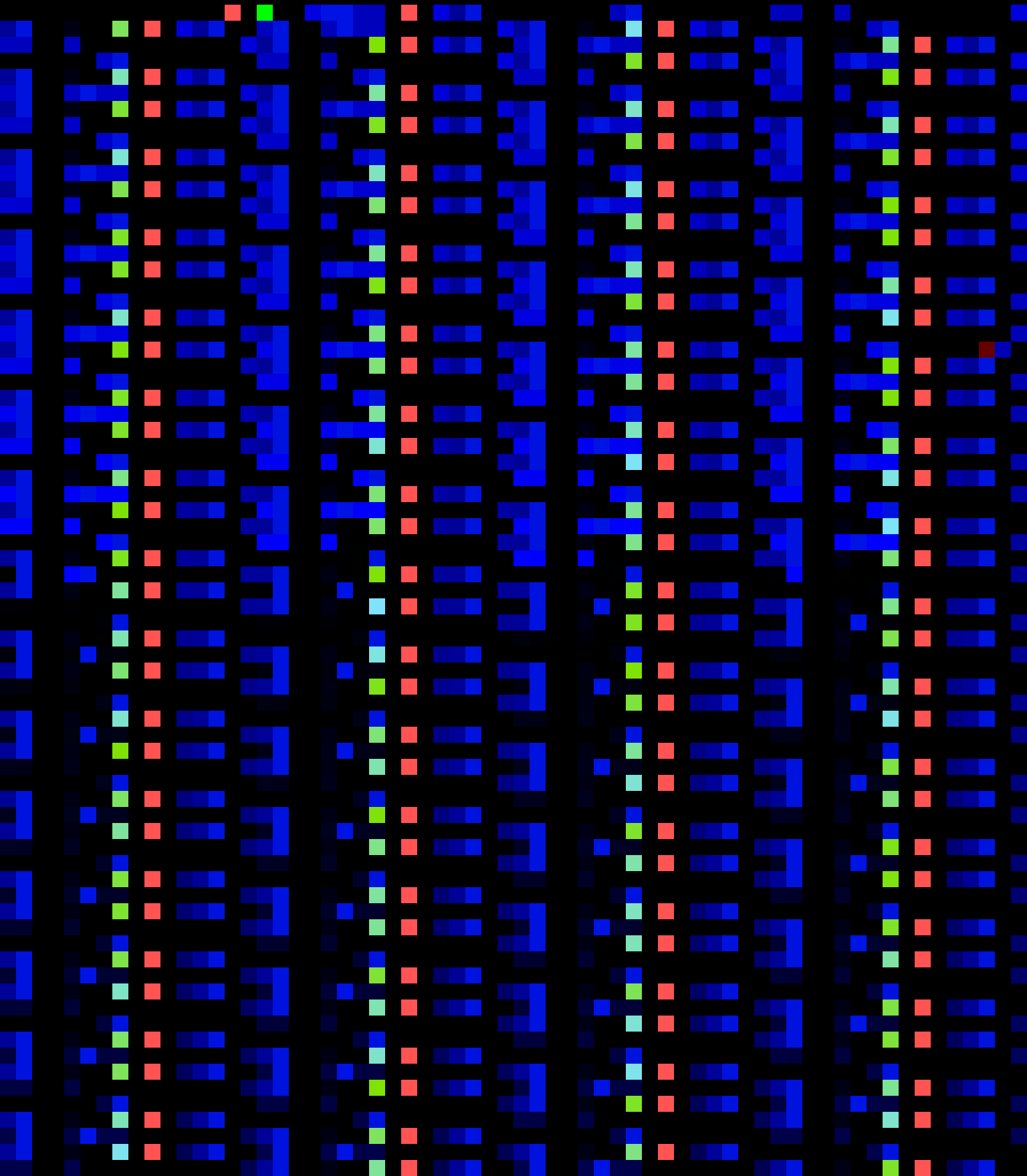
20. Nirod Prasad Kalita, as No. 19
21. Biswajit Sarmah, as No. 19

Andhra Pradesh

1. T. Venkateshwarlu, Vill. Shivaipally, P. O. Pondoorthi, Tq—Domakonda, Disst. Nizamabad—503102.
2. Dhanala Kota Naveen Kumar H, No. 2-5-9, Nakash Street, Peddapally, Distt. Karim Nagar—505172
3. Dhanala Kota Anilkumar, H. No. 2-5-18, as No. 2
4. Erabalt Srinivas Rao (Vasu) H. No. 2-5-11, as No. 2
5. Noomuri Sridhar. H. No. 1-2-112/A, as No. 2
6. Vedantam Srinivasa Chary, H No. 2-5-11, as No. 2
7. C. Jayapal Reddy Head Master, Geetha Vidyalayam, P. O. Peddapally, Distt. Karim Nagar—505172
8. Gudepu Ravindar Rao, (Ravi) B/o G. Dewakar Rao, (Advocate) Sultanabad, Distt. Karim Nagar-505185.
9. Ravula Vijay Bhasker, H. No. 2-5-20, As No. 2
10. Mhd. Yousuf Ali, H. No. 8-3, Subhas Nagar, Sultanabad, Distt. Karim Nagar-505185

Bihar

1. Ganpati Mishra, Vill. & P.O. Telhar, (Via Mahishi), Distt. Saharsa
2. Om Prakash Singh, Vill : Penula Mishir, P.O. Bathua Bazar, Distt. Gopalganj
3. Dhananjay Mishra, Vill & P.O. Khalwagaon, (Via Bathua Bazar), Distt. Gopalgani-841425
4. Dilip Kumar Jaiswal, Mahila Shilp Kala Kendra, Harnaut, Distt. Nalanda-803110
5. Mrs Jayanti Devi, Nisha Silai-Katai School, Bihar Sharif, Distt. Nalanda-803101
6. Nirmal Kumar Verma, Bihar Pradesh Jan-Kalyan Seva Sansthan, Kagji Mohalla, Bihar Sharif, Distt. Nalanda
7. Shyam Kishor Prasad Singh, Bhartiya Jan Utthan Parishad, Kamruddinganj, Bihar Sharif, Distt. Nalanda—803101
8. Birenda Prasad, Vill. Vijaypur, P.O. Belsandi, Distt. W. Champaran

Delhi

1. Miss Manorama, RZ/262, (H—135), Raj Nagar, Palam Colony, New Delhi—110045

Himanchal Pradesh

1. Jagdish Ch. Shukla, Vill. Khaskandi, P.O. Kutara, Distt. Shimla

& Kasmir

Rajendra Kumar, 78, Gali Agnihotri, Moh.—Kachi Chowni, Jammu—180001

ka

K.V. Gajendra Nath, 9, 5th Cross, Srinivas Mandir Road, Balepet, Bangalore—560053

V. Dineshkumar, C—42, G.B Lane, IInd Cross, Cottonpet, Bangalore—560053

Nanjunda Swamy N. 789, IIIrd Cross, Jalageramma Temple St., Srinagar, Bangalore—560050

Mrs. Sudha N. No. 59, 24th Main, Srinagar, Bangalore—560050

Miss. B. Champa, 97 (Up Stairs), 10th D Cross, West of Chord Road, Bangalore—560086

Srinivas N. 11, K. T. Street, Mandi Mohalla, Mysore—570021

P. Murali, 1388, Kabeer Road, 3rd Cross, Mandi Mohalla, Mysore—570002

S. G. Janardhana, 13/11, New Sayaji Rao Road, Bamboo Bazar, (Near Mahaveer Hospital), Devaraj Moh., Mysore—570021

G Jai Shankar, 6, IIIrd Cross, New Bamboo Bazar, Medar's Block, Mysore—570021

V. Kumar, 2203/192, New Bamboo Bazar, Medar's Block, Mysore—570021

Pradesh

Jai Singh Jadon, M G. Ashram, Pali Road, Sheopur Kalan, Distt Morena—476337

Ramesh Kumar Kanojia, C/o. Sh C. L. Kanojia, Welfare Hospital, Junnordeo, Distt. Chhindwara—480551

Sudhir Kumar Shahare, Ward—4, Junnordeo, Distt. Chhindwara—480551

Kalicharan Tiwari, Tejaji Nagar, P. O. Kasturbagramme, Indore—452020

Kishore Rajore, Tejajinagar P. O. Kasturbagramme, Indore—452020.

Rajesh Deshla, 9/7, Parsi MONLOLA, Indore—452020

Vandana Raikwar, 9/7, Parsi Mohalla, G. P. O. Indore—452001

Km. Aruna Kochure, Teajajeenagar, P. O. Kasturbagramme, Indore—452020

Anita Anadeo, C/o. R.M Anadeo, Dharamtekri, Chhindwara

10. Anju Dubey, In Front Pump, Junnordeo, Chhindwara—480551
11. Km. Aparna Dubey, In front of Petrol Pump, Junnordeo Chhindwara—480551
12. Km. Savita Gupta, C/o. G. S Gupta, 41/4F/6, Bhilai—490006
13. Nafisa Bano Hashmi, Q. No. 1/A, Street 8, Sector/1, Bhilai—49000
14. Awadhesh Vishwakarma, Om Mahila Bunai Kendra, Station Road, Durg—493041
15. Trilok Singh, Block No 307—E, Risoli Sector, Bhilai Nagar, Distt. Durg—490001
16. Chitranjan Kumar Gahlot, Choice Corner, 270, Zonal Market, Sector—10, Bhilai
17. Miss Vandana Bhagat, St. 2, Block 1, R No. 4, Sector—5, Bhilai Nagar—490006
18. Miss Varsha Kakadey, EWS—43, Vaishali Nagar, Bhilai —490023
19. Miss Balbir Kaur, Sector—1, Q. No. 1—A, Street 24, Bhilai —490001

Maharashtra

1. Malwadkar Ratnakar Vasantrao, M. D M. College Aurad, (SHA) Ta—Nilange, Distt Latur,—413522
2. Kamble Vankat Vithal Rao, M. D. M. College Aurad (SHA) Ta—Nilanga, Dt. Latur—413522
3. Newade Sanjay Pandurangrao, M. D. M. College Aurad (SHA) Ta—Nilanga, Dt. Latur—413522
4. Giri Ashok Madhave Rao, M. D. M. College Aurad (SHA) Distt. Latur—413522
5. Kasale Deelip Bhimrao, M. D. M. College Aurad (SHA) Ta—Nilanga, Dt. Latur—413522

Manipur

1. L. Jiban Kumar Singh Thoubal, Athokpam, Mayaileikai, Manipur—795138

Orissa

1. Neelmadhab Dheeba C/o. I. Y. D. P. At—Sananagapalli, P. O Jharapalli Via Kalapatthar, Distt. Puri (Orissa)—754008
2. Pradipta Kumar Mahapatra, C/o. I. Y. D. P. Thanapalli, P. O. —Thanapalli, Via—Kalapatthar, Dt. Puri—754008
3. Bhuban Mohan Pradhan, C/o. I. Y D. P. At—Saranaypali P. C —Thanapalli, Via—Kalapatthar, Dt. Puri—754008

Sukesh Kumar Panda, C/o, I. Y. D. P. At.—Saranaypali, P. O. Thanapalli, Via—Kalapatthar, Dt. Puri—754008

Swadhinbala Priyadarshini Nayak C/o. I. Y. D. P. At. Saranayapalli, P. O.—Tharapalli, Via—Kalapatthar, Dt. Puri—754008

Ananta Narayan Mishra, Vill—Damapada, P. O. Damapada, Via—Banki, Distt. Cuttak

Satya Sundar Dash, S/o. Dinbandhudas, Vill & P. O.—Dosopula, Distt.—Puri—752084

Bana Mohanty, S/o. Golak Bihari Mohanty, Vill—Bentkar, P. O — Bentkar, Distt.—Cuttack—408062

Rajendra Kumar Chhotray, S/o. Shri J. K. Chhotray. Vill & P. O. —Gada Srirampur, Distt. Puri—752100

Km. Sanghamitra Panda, D/o Sri Shankar Panda, Vill—Tandala, P. O.—Kuntabada, PS—Baghamari, Distt.—Puri

Pramod Kumar Singh S/o. Sri Kartik Singh, Jyotish Nagar, Budhi Thakurani Lane, Cuttack—753001

Alok Kumar Mohanty, C/o. Mahendra Prasad Mohanty, At. —Bisindbar Darsahi, P. O. — Arundaya Market, Cuttack—753012

Arobindo Karmakar, Jaina Mandir Lane, Alam Chand Bazar, Cuttack—75?002

Ratan Kumar Mishra, S/o. Sri S. N. Mishra, Jyotish Nagar Kazi Bazar, Cuttack—753001

Pradeep Kumar Sahoo S/o Sri B. R. Sahoo, Budhi Thakurani Lane, Cuttack—753002

Niranjan Behera, At & P. O. Bolagarh, Distt. Puri—752066

Manoj Kumar Sahoo, C/o Bapuji Yuba Sangh, At & P. O. Bolgarh, Distt. Puri—752066

Gadadhar Champati C/o Sri Naba Kishore Champati, At & P. O. Bolagarh, Distt. Puri—752066

Ramakrishna Mohapatra, C/o Tareshwar Mohapatra, At & P. O. Raut Pada, Via Begunia, Distt. Puri—752062

Sarat Kumar Sahoo, C/o Gopi Nath Sahoo At & P. O. Bolagarh, Bolagarh, Distt. Puri—752066

Km. Savita, Lakkar Bazar, Kashmir Gali, H. No 542, Ludhiana

Km Reenu, B. V. 348, Sujan Singh St., Benjmen Road, Ludhiana

Km. Usha Mehta, C/o Sri Sant Ram Mehta, H. No. 177, Gali No. 513. Harcharan Nagar, Near Shringar Cinema, Ludhiana

4. Km. Sanjivani Beri, D/o. Sri V. N. Beri H. No. 697, Gaushala Road, Ludhiana
5. Km. Sapna Malhotra, H N. 702, Gaushala Road, Mahmood Pura, Ludhiana
6. Km. Reeta, C/o Sri N. K. Shukla, H. No. 84, Gali No. 3, Samrala Chowk, Ludhiana
7. Km. Bharti Mehata, C/o. Sri B K. Mehata H. No. 3858, Prem Gali, Shivaji Nagar, Ludhiana
8. Km. Dolly Sodhi, C/o Sri Autar Singh Sodhi, H. N. 4250, Shivaji Nagar, Ludhiana
9. Km Ruby Malhotra, H. No. 305, Mochpura Bazar, Ludhiana

Pondicherry

1. Parimalam, 16, Bharathi Puram, (Govindha Salai), Pondicherry—605011
2. K. Krishnamoorthy, 14, Sithananda Nagar, 1st Street, Pondicherry—605008
3. G. Srikanth, H. No. 75, VOC Nagar, Pondicherry
4. C, Shiam Sundar, Sathinivas No. 75, V. O. C. Nagar, Muthialpet, Pondicherry—605003
5. Mohan, C/o T. Veerappam, 3/62, Veerampahiram Street. Ariyam Kuppam. Pondicherry—605007

Tamil Nadu

1. V. Ganesan, 2, Parasakthi St., Potheri Kattankolathur, Chenglepat—603203
2. K. Jayakumar, 9/27, Kamber Street, Potheri, Kattankolathur, Chenglepat—603203
3. N. Kandhavel Swamy, 9/7 Thiruvalluver St., Potheri, Kattan Kolathur, Chenglepat—603203
4. K. Saravanan, 3/38, MIG, NH-2, 7th St. Maraimalai Nagar, Chenglepat—603209
5. G Mohanvel, 9/4, Bajani Kovil St., Potheri, Kattan Gulathur, Chenglepat—603209
6. G. V. Sabarinathan, S/o. Sri K. Venugopalan Poolanikuruchi PTT—622413.
7. V. Ramakrishnan S/o Sri K. Venkatraman, No. 2, Main Road Ponnamaravathy, Pudukkottai - 622407
8. V. Narasimman, S/o Sri K. Venkataraman, As No. 7
9. R. Saravanan, No. 34, Kanaraja Salai, Ashok Nagar, Madras—600083
10. K. C. Chandra Sekaran, No. 60/15, Kottur Puram. Madras—60008
11. R. Raghu No. 5, Perumal Koil. Ist Street, Vadapalani Madras—600026

V Paulraj, No North Gangaınnan Koil Street, Andavar Nagar Madras 600024

A. Selvadurai, No. 24, 84th Street, 13, Sector, K. K. Nagar, Madras-600078

adesh

Vinay Kumar Singh, S/o Sri Vijendra Singh, Vill. & P. O. Media (Chunar) Distt, Mirzapur

Mahendra Singh C/o Vijay Kumar Singh, Vill. & P. O. Media (Chunar), Distt. Mirzapur

Dinesh Chandra Prasad C/o Vijendra Singh, Vill. & P. O. Media (Chunar) Distt. Mirzapur—231304

Anil Kumar Pande, Vill. & P. O. Sirisa Kalwar (Via—Orai) Distt Jalaun

Km. Sushama Agrawal, 91, Jharkhariya, Jhansi—284002

Km. Seema Agrawal, 62, Hingan Katra, Jhansi—284002

Surendra Kumar Sahu, H. No. 51, Tallaiya Moh., Jhansi—284002

Parwaiz Alam 29, Inside Sainyer Gate, Jhansi

Sanjeev Kumar Sahu, H. No. 448, Tallaiya Moh., Jhansi

Akhilesh Awasthi, 13, Gautam Nagar, Fatehpur—212601

Ravinder Kumar Singh, Philadelphia Hostel, R. No. 28, Ewing Christian College, Allahabad

Sanjay Srivastava, C/o Sri K. K. Srivastava, 4-A Rasul Pur, Shastri Nagar, Allahabad

Rajesh Kumar Soni, C/o Sri Mishri Lal Soni, 341/27, Shastri Nagar, Sadiyapur, Allahabad

Manjula Sharma, Vill. Jungle Bakulaha, Post—Padrauna, Distt. Deoria

Panchanan Mishra, Vill, & P. O. Laxmipur Mishra, Distt. Deoria

Rajendra Prasad Vyas, Vill. Sour Bhadura, Post—Kotalgaon, Distt. Tehri Garhwal—249001

Lakshmi Prasad Bhatt Vill. Koti, Post—Thati Katoor, Distt. Tehari Garhwal—249155

Prakash Swaroop Ratodi, Vill Kireth, Post—Kunti Distt. Tehri Garhwal—249001

Ghanshyam Prasad Painuly, Vill. Tilkpad Gamari, P. O. Rauntal, Distt. Uttar Kasi, Uttarakhand—249193

Nabab Chand Yadav Vill. Pakadilala, Post Itahuan Chandauly, Distt. Deoria

Virender Singh Yadav, Vill—Sankarpura, Post—Bhera Pakar, Distt. Deoria

22. Byas Yadav, Vill. Pakadi Lala, P. O Itahuan Chandauly, Distt. Deoria
23. Smt. Kamala Lal C/o Sri H. N. Lal, 7, Kalyanpur, Gorakhpur—273001
24. Bramh Dutta Mishra, Vill. Malludih, P. O. Karmaini Premvaliya, Distt. Deoria
25. Akhilesh Chandra Tripathi, Vill. Dalapur, Post Ramaipur, Allahabad
26. Km. Kalpana Upadhyay, C/o Sri S. P. Sharma, Bara Qazipur, Hata Nasheman, Gorakhpur—273001
27. Km. Savita Gupta, C/o Sri R. C Gupta, Alinagar North, Gorakhpur—273001
28. Km. Reeta Srivastava, C/o Sri G. P. Srivastava, Infront of DAV Inter College, Gorakhpur
29. Km. Nirupama Dwivedi, C/o Sri G. N. Dubey, H. No. 109, Jagannathpur, Gorakhpur—273001
30. Matsya Raj Mishra, Vill. Tarubanwa, P. O. Laxmipur Mishra, Distt. Deoria—274401
31. Gurudutta Upadhyay, Vill. Vishunpura, Post Joura Bazar, Distt. Deoria
32. Akhilesh Kumar Rai, V. & P.O.——Sisotar, Distt. Ballia-277303.
33. Km. Kiran Magh, Burmese Buddha Temple, Kushinagar, Deoria.
34. Surendra Pratap Chaudhary, Vill. Gopalpur, Post—Salempur, Distt Deoria.
35. Anil Kumar Gupta, C/o. Shri Nandlal Ward No. 6, V. & P.O.—Seorhi, Tamkuhi Road, Distt. Deoria.
36. Ravindra Kumar Yadav, S/o. Sri Sunder Dev Yadav, Vill. Madalchak Post—Majhouli Raj, Distt. Deoria.
37. Brajendra Kumar Prajapati, Nehru Nagar, Maharajganj—273303.
38. Jaihind Kumar Gautam, Indira Nagar, Maharajganj—273303.
39. Sanjeet Kumar Gautam, Nehru Nagar, Maharajganj—273303.
40. Upendra Kumar Yadav, V. & P O.—Pakaha, Distt. Deoria.
41. Bhanu Prakash Dwivedi, V. & P.O.—Mahua Bajratar, Distt. Deoria.
42. Anil Pratap Mall, Vill—Devgaon, Post Nebua Rayganj, Distt. Deori
43. Shrikrishna Kumar Gupta, Vill—Laxmipur, Post—Nebua Rayganj Distt. Deoria.
44. Hare Ram Yadav V. & P.O.—Koilaswan Bujurg, Distt. Deoria.
45. Trilcki Nath Pandey, C/o. Sri L. N. Pandey, Buddha Marg, Kushi Nagar, Deoria.
46. Ajay Kumar Mishra, C/o. Sri C. B. Mishra, Deptt. of Philosophy, B. P. G. College, Kushi Nagar, Distt. Deoria.

Krishna Kumar Tripathi, C/o. Sri B. N. Tewari, Birala Dharamshala, Kushi Nagar, Deoria.

Ashok Kumar Mishra, C/o. Sri Dhruv Narayan Mishra, Vill—Karjaban, Post—Banbira, Distt. Deoria—274401.

Mohd. Samsam Ansari, C/o. Dr. R. N. Sharma, V. & P.O.—Gauri Bazar, Distt. Deoria—274202.

Barister Kr. Singh, G. M. Bunglow No. 3/K, N. E Railway Gorakhpur.

Virendra Kumar Pandey, C/o. Sri Heera Lal Shukla, Dharamshala Bazar, Jata Shanker Pokhara, Gorakhpur.

Umesh Rao, Vill Phulvaria, Post Laxmiganj, Distt. Deoria.

Km. Meena Verma, C/o. Sri A. K. Verma, Q. No. D/232, FCI Colony, Post—Fertilizer Factory, Distt. Gorakhpur.

Rishi Kumar Verma, C/o. Sri A. K. Verma, Q. No. D/232, FCI Col., Fertilizer Factory, Gorakhpur.

Trigunanand Dubey, Vill & P.O. —Now Munda Via—Sukrauli, Distt. Deoria.

Ram Pratap Yadav, Vill—Anrudhawa, Post—Kushinagar, Distt. Deoria.

Surendra Kumar Singh Vill—Narayanpur Kothi, Post—Shanker Pahkhauli, Distt. Deoria.

Km. Prem Sheela Mishra C/o. Sri S. N. Mishra, Forest Colony North, Gorakhpur.

Km. Manju Hanswani C/o. Sri Govind Ram, Niyaamat Chak Gorakhpur.

Km. Anita Rani Gupta, C/o. Sri Gulab Chand, Watch Maker, Naya Bazar, Reti Road, Gorakhpur.

Bheemsen Yadav V & P.O.—Ramchaura, Distt. Gorakhpur—273158.

Roop Singh Mehta, Vill—Jaiti, Post Ratir Katti, Distt. Almora.

Anand Kumar Lohar, Vill—Malkha, P.O. Ratir Katti, Distt. Almora.

Bhagat Singh Mehta, Vill—Jaiti, P.O.—Ratir Katti, Distt. Almora.

Anil Kumar Upadhyaya, Vill—Mishrauli, Post—Piparaghat, Distt. Deoria.

Brajesh Kumar Ray Vill—Jhadwa Pipara, Post Pipara Agarwan Distt. Deoria.

Raj Bahadur Yadav, S/o Sri Ram Kumar Yadav, Vill—Basupur, Phema, Distt. Jaunpur

Arun Kumar Yadav, Vill Lolika, P, O. Khajurahawan, Distt. Jaunpur

Rajendra Prasad Yadav, S/o Sri R, M. Yadav, village—Surtaspur, Post—Gulzar Ganj, Distt. Jaunpur

70. Vikas Kumar Srivastava, H.No. 389, Purdilpur, Bank Road Gorakhpur
71. Ranju Singh, C/o Udai Nath Singh, Near N. C. C. Office, Fulwari Darbar, Padrauna, Deoria—274304
72. Dinesh Pratap Singh, S/o Sri S. P. Singh, Vill. —Vishunpura, P. O. Kushinagar Distt Deoria

Volunteers

1. Shakti Khanna, C/128/174, Hazaripur, Arya Nagar, Gorakhpur—273001
2. Dharmendra Kumar Srivastava, C/o Sri Udai Chand Srivastava, 33, Sukhdeo Niwas, Golghar, Gorakpur
3. Rajesh Kumar Rai, Golabazar, Kasia, Deoria—273003
4. Chetan Anand, Anand Trader, Ismailpur, Gorakhpur
5. Brijesh Kumar Srivastava, 127/253, Dilezakpur, Gorakhpur
6. Sanjai Kumar Pandey, Q. No. E 204, F. C. I. Colony, Gorakpur
7. Surendra Kesharwani, C/o Sri O. P. Kesharwani, Shankar Oil Mill, Sahebganj, (Gurmandi), Gorakhpur
8. U. Nayaka, Burmee Buddhist Temple, P. O. Kushi Nagar, Deoria
9. Bhikshu Varsambodhi, International Buddha Bhawana Kendra, Naya Danswar, Kathmandu (Nepal)
10. Bhikshu Sheel Prakash Burmees Buddha Bihar, P. O. Kushi Nagar, Deoria
11. Raghunath Sharma. Kushi Nagar, Deoria—274403
12. Sitaram Urf Rafiq, Vill & P. O. Kushi Nagar, Deoria (UP)
13. Kedar, Vill. Dumari, P. O. Kasia, Deoria
14. Harilal, Vill. Dumri, P. O. Kasia, Deoria
15. Ram Nagina, Zangal Jagdishpur, P. O. Sarpatahi, Deoria
16. Suresh Prasad Dixit, Vill. Ahiraulee Bujurg, P. O. Padrauna, Distt. Deoria
17. Rajendra Prasad Srivastava, V & P. O. Belwa Jungle Branch Padrauna, Deoria (U. P.)
18. Humayun Kabir Khan, Vill Masjidia, P. O. Hata, Deoria
19. Ram Chandra Prasad, Vill Bandhoochhapra, P. O. Padrauna, Deoria—274304
20. Raaj Kishore Prasad, Vill—Bandhoochhapra, P. O. Padrauna, Deoria
22. Ekramul Haque, V & P. O. Bhuidharwa, Distt. W. Champaran, Bihar
23. Mahendra Kumar Arya, Vill Adhikari, P. O. Kathkuiyan, Distt. Deoria
24. Ram Bahadur Kushwaha, Katai Bharpurwa (Madrahwan) Padrauna, Deoria.
25. Devendra Pratap Singh, Kanowjia Word North, Near Kanhaiya Talkies. Padrauna, Deoria—274304
26. Kishor Kumar Yadav, Vill—Piparahee, P. O. Dashanawa, Distt. Deoria

□ □

राष्ट्रीय युवा योजना, जौरा (मुरैना) के तत्वावधान में
विवेकानन्द युवा कल्याण केन्द्र, पडरौना के
स्थानीय सहयोग से आयोजित
राष्ट्रीय एकता युवा शिविर कुशीनगर
की सफलता हेतु मंगल कामनायें

□ □

ओरियण्टल बैंक ऑफ क

बैंक रोड, गोरखपुर

□ □

राष्ट्रीय एकता युवा नेतृत्व शिविर
कुशीनगर की सफलता की कामना सहित

किसान सेवा सहकारी समिति लिमिटेड

हाटा वि० खं०—(देवरिया)

विशेषतायें :—

1. अल्पकालीन एवं मध्यकालीन ऋण वितरण
2. कीटनाशक दवाओं एवं उर्वरकों की आपूर्ति
3. सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अधीन व्यवसाय
4. अन्य उपभोक्ता व्यवसाय

प्रकाशचन्द्र सिंह
सचिव

राष्ट्रीय एकता युवा नेतृत्व शिविर
कुशीनगर की सफलता की कामना सहित

साधन सहकारी समिति लि०

सवना लक्ष्मन, वि० खं० गौरी बाजार

विशेषतायें :—

1. अल्पकालीन एवं मध्यकालीन ऋण वितरण
2. कीटनाशक दवाओं एवं उर्वरकों की आपूर्ति
3. सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अधीन व्यवसाय
4. अन्य उपभोक्ता व्यवसाय

त्रिलोकी नाथ सिंह
सचिव

राष्ट्रीय एकता युवा नेतृत्व शिविर
कुशीनगर की सफलता की कामना सहित

किसान सेवा सहकारी समिति लिमिटेड

बौड़िया अनन्तपुर, वि० खं० बेतालपुर

विशेषतायें :—

1. अल्पकालीन एवं मध्यकालीन ऋण वितरण
2. कीटनाशक दवाओं एवं उर्वरकों की आपूर्ति
3. सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अधीन व्यवसाय
4. अन्य उपभोक्ता व्यवसाय

राम प्रसाद
सचिव

राष्ट्रीय एकता युवा नेतृत्व शिविर
कुशीनगर की सफलता की कामना सहित

साधन सहकारी समिति लि०

डाला, वि० खं० रुद्रपुर

विशेषतायें :—

1. अल्पकालीन एवं मध्यकालीन ऋण वितरण
2. कीटनाशक दवाओं एवं उर्वरकों की आपूर्ति
3. सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अधीन व्यवसाय
4. अन्य उपभोक्ता व्यवसाय

समतुल्लाह
सचिव

राष्ट्रीय एकता युवा नेतृत्व शिविर कुशीनगर की सफलता की कामना सहित

पडरौना सहकारी क्रय-विक्रय समिति

पडरौना वि० खं० पडरौना

विशेषतायें :—

1. अल्पकालीन एवं मध्यकालीन ऋण वितरण
2. कीटनाशक दवाओं एवं उर्वरकों की आपूर्ति
3. सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अधीन व्यवसाय
4. अन्य उपभोक्ता व्यवसाय

पूर्णमासी तिवारी
अध्यक्ष

कामता प्रसाद गुप्त
सचिव

राष्ट्रीय एकता युवा शिविर कुशीनगर के सफल आयोजन हेतु मंगल कामनायें

*

कुशीनगर भिक्षु संघ, कुशीनगर (देवरिया)

*

भिक्षु अच्युतानन्द
अध्यक्ष

भिक्षु ज्ञानेश्वर
मन्त्री

राष्ट्रीय एकता युवा शिविर कुशीनगर के सफल आयोजन हेतु शुभ कामनायें

रामकरन इण्टर कालेज, भीमपुरा (बलिया)

राम सागर सिंह
प्रबन्धक

राम अवतार सिंह
प्रधानाचार्य

राष्ट्रीय एकता युवा नेतृत्व शिविर, कुशीनगर की सफलता की कामना सहित

बुद्ध स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुशीनगर (देवरिया)

*

डॉ० पी० सिंह
प्राचार्य

राष्ट्रीय एकता युवा नेतृत्व शिविर
शीनगर की सफलता की कामना सहित

साधन सहकारी समिति लि०

सिधुवा, वि० खं०—रामपुर कारखाना

विशेषतायें :—

अल्पकालीन एवं मध्यकालीन ऋण वितरण
कीटनाशक दवाओं एवं उर्वरकों की आपूर्ति
सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अधीन व्यवसाय
अन्य उपभोक्ता व्यवसाय

छेदीराव
सचिव

राष्ट्रीय एकता युवा नेतृत्व शिविर
कुशीनगर की सफलता की कामना सहित

साधन सहकारी समिति लि०

विशुनपुरा, वि० खं० पथर देवा

विशेषतायें :—

1. अल्पकालीन एवं मध्यकालीन ऋण वितरण
2. कीटनाशक दवाओं एवं उर्वरकों की आपूर्ति
3. सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अधीन व्यवसाय
4. अन्य उपभोक्ता व्यवसाय

विष्णुदेव सिंह
सचिव

राष्ट्रीय एकता युवा नेतृत्व शिविर
कुशीनगर की सफलता की कामना सहित

साधन सहकारी समिति लि०

परास खांड़, वि० खं० देसई (देवरिया)

विशेषतायें :—

1. अल्पकालीन एवं मध्यकालीन ऋण वितरण
2. कीटनाशक दवाओं एवं उर्वरकों की आपूर्ति
3. सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अधीन व्यवसाय
4. अन्य उपभोक्ता व्यवसाय

रामबड़ाई राय
सचिव

राष्ट्रीय एकता युवा नेतृत्व शिविर
कुशीनगर की सफलता की कामना सहित

साधन सहकारी समिति लि०

मझौली, वि० ख०—सलेमपुर

विशेषतायें :—

1. अल्पकालीन एवं मध्यकालीन ऋण वितरण
2. कीटनाशक दवाओं एवं उर्वरकों की आपूर्ति
3. सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अधीन व्यवसाय
4. अन्य उपभोक्ता व्यवसाय

बबुआन दत्त दूबे
सचिव